



## अनुक्षण्डान - ७२

प्राकृतभाषा अने जैनसाहित्य विषयक संपादन, संशोधन, माहिती वगेरेनी पत्रिका

## संपादक : विजयशीलचन्द्रसरि

አዲስ አበባ - የኢትዮጵያ

त्रिवेदीयाद्यवृद्धिवृद्धिरुपालोमहिषालस्त्वसंबन्धानुद्योगान्तर्क्रियाक्रियामात्रवृद्धि

मन्त्रपराम्परा विद्या का अध्ययन विद्यालयों में बहुत सारी शैक्षणिक संस्थाएँ और विद्यालयों के नियंत्रण में आवश्यक है।

॥ तद्विद्याम् तद्विद्याम् तद्विद्याम् तद्विद्याम् ॥

Digitized by srujanika@gmail.com

www.english-test.net

Digitized by srujanika@gmail.com

Digitized by srujanika@gmail.com

कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि

मोहरिते सच्चवयणस्स पलिमंथू ( ठाणंगसुत्त, ५२९ )  
‘मुखरता सत्यवचननी विधातक छे’

## अनुसन्धान

प्राकृतभाषा अने जैनसाहित्य-विषयक  
सम्पादन, संशोधन, माहिती वगेरेनी पत्रिका

७२

सम्पादक :  
विजयशीलचन्द्रसूरि



श्रीहेमचन्द्राचार्य

कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी  
स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि  
अहमदाबाद

२०१७

## अनुसन्धान - ७२

आद्य सम्पादक : डॉ. हरिवल्लभ भायाणी

सम्पादक : विजयशीलचन्द्रसूरि

सम्पर्क : C/o. अनुल एच. कापडिया

A-9, जागृति फ्लेट्स, पालडी

महावीर टावर पाछळ, अमदावाद-३८०००७

फोन : ०७९-२६५७४९८१

E-mail : s.samrat2005@gmail.com

प्रकाशक : कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम  
जन्मशताब्दी स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि,  
अहमदाबाद

प्राप्तिस्थान : (१) आ. श्रीविजयनेमिसूरि जैन स्वाध्यायमन्दिर  
१२, भगतबाग, जैननगर, नवा शारदामन्दिर रोड,  
आणंदजी कल्याणजी पेढीनी बाजुमां, अमदावाद-३८०००७  
फोन : ०७९-२६६२२४६५

(२) श्रीविजयनेमिसूरि ज्ञानशाला  
शासनसग्राट् भवन, शेठ हठीभाईनी वाडी,  
दिल्ही दरवाजा बहार, अमदावाद-३८०००४

(३) सरस्वती पुस्तक भण्डार  
११२, हाथीखाना, रतनपोल,  
अमदावाद-३८०००९  
फोन : ०७९-२५३५६६९२

प्रति : 250

मूल्य : ₹ 130-00

मुद्रक : क्रिश्ना ग्राफिक्स, किरीट हरजीभाई पटेल  
९६६, नारणपुरा जूना गाम, अमदावाद-३८००१३  
(फोन: ०७९-२७४९४३९३)

## निवेदन

थोडा समय पहलां एक दरखास्त उपस्थित थई : जैन इतिहास लखवो जोईए; तमे लखो; तमारा नेतृत्व हेठल एक जूथ रचीने जैन इतिहासना प्रमाणभूत सो ग्रन्थो तैयार करो.

दरखास्त रजू करनारा लोकोनो आशय कांइक आबो हतो : बीजाओ तरफथी जैनोने अने जैन इतिहासने घणो अन्याय थयो छे; जैन इतिहासनी घणी बाबतोने ढांकी के दाटी देवाई छे, अने घणी बाबतो बीजाओना नाम पर चडी गई छे. आ बधानी खोजबीन करीने जैनोनी वातोने प्रकाशमां आणवी जोईए, जेथी जैन धर्मनुं गौरव वधे.

अलबत्त, आमां, जे सैकाओथी चाली आवती, परम्परागत मान्यताओ, भले ते जनश्रुतिमात्र होय के पछी इतिहासकारैनी दृष्टिए खोटी पुरवार थई के थती होय, तेने तो निर्विवाद के निःसन्दिग्ध इतिहास ज गणवानो. एमां पुरातत्त्व, शिलालेखो, भाषाशास्त्र, इतिहास - आ बधी दृष्टिए ते मान्यता खरी न ऊतरती होय तो पण तेने ऐतिहासिक अने प्रमाणभूत तथ्य तरीके स्वीकारीने ज चालवानुं, ए पायो तो पाको ज हतो, एमना मनमां.

अने आपणे जाणीए छीए के दन्तकथाने कोई इतिहास नथी गणतुं, अने दन्तकथा-लेखकने कोई इतिहासकार नथी गणतुं.

इतिहास आलेखवो होय तो पहेलां तो जे विषयनो इतिहास लखवो होय ते विषयने तेना कालानुक्रमे साङ्गेपाङ्ग जाणवो पडे. दा.त. जैन इतिहास लखवो छे, तो तेना अढी हजार वर्षनां अधिकृत अनेक शास्त्रो-ग्रन्थो, अभिलेखो, कथाओ अने दन्तकथाओ, पौराणिक तेमज ऐतिहासिक गणाता लोकोनां चरित्रो-कथानको, तेमज आ बधांय विषे बीतेली सदीओमां के दायकाओमां, देश-विदेशमां, विभिन्न दृष्टिकोणोथी, जे अध्ययन-संशोधनादि थयां होय ते बधांनो परिचय मेळववो पडे. पछी तेने अनुषङ्गे बौद्ध आदि धर्म तथा दर्शनना साहित्यनुं अवगाहन करवुं पडे. पछी देश-विदेशना अनेक इतिहासकारो तथा पुरातत्त्व-विदोए पोताना ते ते विषयना अभ्यास दरमियान आ-जैन-विषय विषे जे पण तारणो-संशोधनो नोंध्यां होय, ग्रन्थो के शोधपत्रो व. लख्या होय, ते बधांनुं

अवलोकन करवुं पडे. अभिलेखो, मूर्तिलेखो पण उकेलवा पडे. आटलुं बधुं करीए त्यारे कदाच इतिहास लखवा जेटली भूमिका रचाय तो रचाय.

आटली मथामण कर्या पछी, तेनी - इतिहास लखवा मथनारनी दृष्टि उघड्या विना न रहे. तेनी श्रद्धा विशद जरूर बने, पण तेनी अन्धश्रद्धा तेम ज भ्रमणा तो खरी ज पडे. फलतः आवो मनुष्य ज्यारे इतिहास लखशे त्यारे तेमां परम्पराथी चाली आवती अनेक भ्रान्त मान्यताओ, चमत्कारिक कथाओ, कालव्यत्यय तथा नामो वगेरेना गोटाळ्या इत्यादि कारणोसर सर्जायेली गुंचो, आ बधुं ते टाळशे, तेणे टाळवुं ज पडशे, अने ए रीते ए इतिहासनी फरते वींटळाई वळेलां केटलांय आवरणोने ते हटावी देशे.

स्वाभाविक रीते ज, व्यापक समाजने अने तेना लोकप्रिय नेताओने आ मान्य न होय. भ्रमणाओने छोडवी ए तो धर्मने छोडी देवा जेवुं विकट काम ! इतिहास जो 'जैन' होय, तो आ भ्रमणाओने पण 'जैन भ्रमण' तरीके ज गणवानी रहे !

संशोधन हमेशां भ्रमणाओनो भांगीने भूको करनारो पदार्थ छे. 'जैन' भ्रमण छे माटे तेने न तोडाय, तोडवाथी मिथ्यात्व चोटे - एवा विकल्पने संशोधन स्वीकारतुं के पोषतुं नथी. परम्परावादी समाज तरफथी विरोध अने त्रास खमवो पडशे - एवा भयथी, संशोधन, भ्रमो साथे तडजोड करतुं नथी. जैन इतिहास ए जैन पांऊभाजी जेटलो सामान्य, सरल अने चटाकेदार पदार्थ नथी, तेनो तेने पूरो ख्याल होय छे.

आथी ज, जैन इतिहासनुं आलेखन ए कोई एक-बे व्यक्तिओना वशनी वात नथी. अभ्यासी, सुसज्ज अने इतिहासज्ज व्यक्तिओनुं एक जूथ (Team) एकत्र मळे, अने निर्मम तटस्थभावे मूल्याङ्कन करतां जईने एक प्रामाणिक तथा प्रमाणभूत इतिहास सर्जे-आलेखे, आलेखवानी खेवना राखे, तो उपरोक्त दरखास्त सार्थक बने.

बाकी, दरखास्तो मूकवामां ज इतिहास रची दीधानो तथा इतिहासनी सेवा कर्यानो ख्याल जो प्रवर्ततो होय, तो भविष्यमां ज्यारे पण, जो इतिहास खरेखर लखाशे, तो, त्यारे तेनी नोंध अवश्य लेवाशे.

## आवरणचित्र विषे

प्रस्तुत अङ्कमां श्रीबालचन्द्रसूरि-विरचित वस्तुपाल-प्रशस्ति-काव्य प्रगट थयुं छे. ते काव्यनी प्रतिनुं पानुं प्रथम आवरण पर आय्युं छे. गिरनारतीर्थ परना, वस्तुपाल-तेजपालना देरासरमां छ प्रशस्ति लेखो उत्कीर्णित होवानुं अने आ प्रशस्तिकाव्यनी प्रति ते लेखोनी ज प्रतिलिपिरूप होवानुं सम्पादकोए नोंध्युं छे. आ प्रति प्रण १५मा सैका जेटली पुरातन होय एम अनुमान थाय छे.

चोथा आवरण पर आवेल छबी, गिरनारना वस्तुपालनिर्मित जिनालयमां वर्तमानमां पण जे ते वखतना प्रशस्तिलेखो मोजूद छे, तेमांना एक लेखनी छे. त्रण-चार लेख-शिलाओ त्यां उपरनी दीवालोमां लागेली छे तेमांनी आ अके छे. जो के ते लेखने अत्रे सम्पादित-प्रकाशित प्रशस्ति साथे कोई सम्बन्ध होय एम जणातुं नथी. बनेनी वाचना अलग अलग जणाई छे. ते लेख क्यांय प्रकाशित थयो होय तो बनवाजोग छे. त्यां अन्य पण, घसायेला तथा खण्डत थयेला लेखो छे, अने ते बधा वस्तुपालना समयना ज छे. ते बहु महत्वपूर्ण बाबत छे.

## अद्वृक्रम

### सम्पादन

विज्ञप्तिका ( अपूर्णा ) — सं. मुनि त्रैलोक्यमण्डनविजय ३

वस्तुपालसम्बन्धी २ प्राचीन — सं. मुनि सुयशचन्द्रविजय गण १

ऐतिहासिक प्रशस्तिओ — सं. मुनि सुजसचन्द्रविजय गण  
मुनि सुजसचन्द्रविजय १०

गूढा - प्रहेलिका - समस्या - हरियाली — सं. उपा. भुवनचन्द्र ६५

श्रीमानसागर-विरचित  
आषाढाभूति सतडाळियो — सं. प्रा. अनिला दलाल ८८

### स्वाध्याय

तत्त्वबोधप्रवेशिका - ३  
वेदों का अपौरुषेयत्व — मुनि त्रैलोक्यमण्डनविजय १०१

एक भ्रष्ट पाठे सर्जेली समस्या — मुनि त्रैलोक्यमण्डनविजय ११५

विहंगावलोकन-अङ्क ७० — उपा. भुवनचन्द्र ११९

विहंगावलोकन-अङ्क ७१ — उपा. भुवनचन्द्र १२३

### माहिती :

डो. सागरमल जैनने 'हेमचन्द्राचार्य-चन्द्रक' १३२

डो. भारतीबेन शेलतने 'श्रीपुण्यविजयजी-चन्द्रक' १३३

## विज्ञप्तिका (अपूर्णा)

— सं. मुनि त्रैलोक्यमण्डनविजय

देवेन्द्रसेवित... थी शरु थता वसन्ततिलका छन्दना एक ज श्लोकना विविध अर्थों द्वारा प्रभुनी विज्ञप्तिस्वरूप आ रचना छे. कर्ताए ए एक ज श्लोकना विभिन्न पदच्छेदो-अर्थों दर्शावीने सामान्य जिन अने वर्तमान चोवीशीना २४ जिन एम कुल २५ जिननी एक साथे स्तुति करी छे. कर्ता दरेक जिननुं नाम जे रीते श्लोकमांथी काढी आपे छे ते खरेखर रसप्रद छे. स्तुतिगत विशेषणोना अर्थों पण नवा नवा नीकळता ज रहे छे. समग्रपणे जोतां कृति आपणा मन पर क्रताना वैदुष्यनी छाप अङ्कित करी आपे तेवी सक्षम छे.

कृतिना कर्ता, रचनासमय व. बाबतो पुष्टिकाना अभावे जाणी शकाई नथी. श्रीशीतलनाथनी स्तुति सुधीना कुल ११ अर्थों जेटली ज कृति (हस्तप्रतनां ४ पानां) उपलब्ध थई छे. हस्तप्रतनी बाचना घणी ज अशुद्ध छे.

हस्तप्रत श्रीवीरसूरीश्वरजी ज्ञानमन्दिरनी छे. जेनी Xerox सुश्रावक श्रीबाबुलाल सरेमल शाह - साबरमतीना सहयोगथी प्राप्त थई छे.

\*

देवेन्द्रसेवित! विपापयुगाऽदिनाथ!,  
विश्वारिभीरणभरैरपराजित! स्तात् ।  
नेतः! श्रियां परपदाश्रय! शं भवान् मे,  
श्रीवीतराग! शमितान्तिनिवारकाख्य! ॥

विज्ञप्तिकायामत्र ॐ नत्वा इति पूर्वं व्यावर्ण्यते । तत्र प्रथममिष्ठैवर्ते- (देवतायै) नमस्कृतिरूपः अनन्तसङ्ख्यात्मकसर्वसाधारणश्रीजिनस्तुतिविशेषो खते- (लिख्यते) यथा -

हे देवेन्द्रसेवित!, दीव्यन्ति- क्रीडन्ति अप्सरोभिः सह [इति] देवाः चतुर्विधाः, तेषामिन्द्राः- स्वामिनो महदैर्थ्यधराश्चतुःषष्टिसङ्ख्या वासवास्तैः, अथवा देवाश्च इन्द्राश्च देवेन्द्रास्तैः सेवित! । हे विपापयुग!, विगतं पापस्य युगं यस्माद् भवतः स विपाठ, तस्य सम्बोधनम् । हे अदिनाथ!, दं- कलत्रं विद्यते येषां

ते दिनः, नैकाक्षरार्गिद(दि)ति(?) सूत्रेण अत्र इन्-प्रत्ययस्य एकाक्षर-शब्दादघटमानत्वेऽपि 'विशेषे बहुल'मिति सूत्रप्रामाण्याद् लक्षणस्य बहुविविध-प्रयोगगरिष्टत्वाद् इन् समेति न दोषः । इति अन्यत्राऽपि ज्ञेयम् । न दिनः अदिनः परिग्रहारभिरहिता यतय इत्यर्थः । तेषां नाथ! । हे विश्वारिभिः रणभरैः अपराजित! विश्वे- समस्ता बाह्याभ्यन्तररूपाः काम-क्रोधादयोऽरयो-वैरिणस्तै रणभरैः- सद्यग्रामभरैरनभिभूत् । अथवा विश्वारिभिः साकं रणभरै-रपराजित! । हे नेतः!- स्वामिन्! । हे श्रियां- बाह्याभ्यन्तराणां पर-पदाश्रय!- प्रकृष्टपदस्थान! । हे शमितान्तिनिवारकाख्य!, शमिनो- यतयस्तेषां तान्तिनिवारका आख्या यस्य ते, तस्य सम्बोधनं हे शमि० । एवंविधगुणोत्तम! हे श्रीवीतराग!, भवान्- त्वं मे- मह्यं शं- सुखाय स्तात्- भव इति वृत्तेक्ष-(ताक्ष)रार्थः ॥१॥

अथ वर्तमानचतुर्विशतिजिनवर्णनमया नमस्काराः क्रमेण विविधपद-योजनाभिर्लिख्यन्ते । यथा -

देवेन्द्रसेवित! विपाप! युगादिनाथ!,  
विश्वारिभीरणभरैरपराजित! स्तात् ।  
नेतः! श्रियां परपदश्रय! शं भवान् मे,  
श्रीवीतराग! शमितान्तिनिवारकाख्य! ॥

व्याख्या - हे देवेन्द्रसेवित!, इह देवशब्दस्याऽनेकेऽर्थाः सन्ति । यतः दिवूच् क्रीडा १ जयेच्छा ३ पणि ४ द्युति ५ स्तुति ६ गतिषु ७ । दीव्यन्ति-क्रीडन्ति अप्सरोभिः सममिति । दीव्यन्ति- जयन्ति दानवादीनपरानपि प्रतिपक्षान् मानवोनयिवा (मानवान् यौवन-)रूप-लावण्या-३मृताहारा-३जरत्वा-५रोग्या-५त(नि)मिषता-कान्तिप्रभृतिगुणैरिति देवाः । दीव्यन्ति- इच्छन्ति सुरसम्बन्धि-वृत्त्यादि सुखंद्रा(सुरेन्द्रा)देशं केचित् सम्यग्दृशो जिनदर्शनं बोधिबीजं मानुष्यभवं समवसरणरचनादि जैनवैयाकृत्यं वेति देवाः । दीव्यन्ति- व्यवहरन्ति देवसम्बन्धित-दुचितव्यापारैरिति देवाः । दीव्यन्ति- उत्पत्तिमारभ्य आ जीवधारणावधि द्युतिभाज एव भवन्ति देवाः । तथा दीव्यन्ति- स्तुवन्ति जिनादीन् महर्षीन् स्वस्वामिनो वा देवाः । पुनर्गच्छन्ति अर्हदादीन् नन्तु तत्कल्याणिकमहं शासने महतां साधूनां सांनिध्यं वा कर्तुं शक्रादीनां सेवनां वा स्वस्वामित्वात् शरणं वा । अथ गच्छन्ति-प्राप्नुवन्ति आमरीसम्पदं सुखश्रेणिमिति देवाः । तथा देवशब्दस्य अपरधातुभि-

र्तिष्ठतेरपि सर्वत्राऽत्राऽर्थानामपौनरुक्त्यं ज्ञेयम् । हे विपाप!, विगतं पापं यस्मात् स विं, तस्याऽमन्त्रणं हे विं । हे विश्वारिभीरणभरैः०, अरि(री)णां भीर्भयमरिभीश्च रणभराश्च अरिभी०, विश्वे च तेऽरिभी० विश्वारिभीरणभरास्तैर-पराजित! । हे श्रियां नेतः० । प्रापक!, भक्तानामिति गम्यम् । हे परपदाश्रय!, परे- प्रकृष्टे पदे- निर्वाणस्थाने आश्रयो यस्य स०, तस्य सं० । हे शमि०, प्राग्वत् । हे श्रीवीतराग!, वीतो रागो यतो भवतस्तस्याऽमन्त्रणम् । य ईदृग्गुणः हे श्रीयुगादिनाथ! भवान् मे शं स्तात् । इति श्रीऋषभः ॥२॥

देवेन्द्रसेवित! विपाप! युगादिनाथ!,

विश्वारिभीरणभरैर! पराऽजित! स्तात् ।

नेतः०! श्रियां परपदाश्रय! शं भवान् मे,

श्रीवीतराग! शमितान्तिनिवारकाख्य! ॥

व्याख्या - आद्यविशेषणद्वयं पूर्ववत्० । हे युगादिनाथ!, विद्यते दो-दानं परकृतशंदायको वा येषामथवा दा- दानं परसूत्रितं दाता वा विद्यते येषां ते दिनः । दकार-दाकारयोरपि एतदर्थवर्तिता नामकोशोक्ताऽस्ति । क्वचित् क्वचित् भिन्नार्थतया ग्राह्यमपुनरुक्ततायै । न दिनः अदिनः, पैररदत्तधन्याद्यर्थाः कृतसाराः अत एव दौःस्थ्यभाजः, एते एव दीना जना इति भावार्थः । युग(गे) कृतादौ अदिनः युगादिनः, एतदजितायुषि बाहुल्यात्(ल्याद्) बहुयुगातिक्रमः अभूत्, तेन युगचतुष्क्षस्याऽपि ग्रहणमादिशब्देन । युगादीनां नाथः युग०, तस्य सं० हे यु० । हे विश्वारिभीरणभरैर!, अश्वे- कल्याये(कल्ये?) अरयः असामर्थ्येऽपि सन्मुखभषणपरत्वात्, यतः शास्त्रे शुनामीदृक्स्वभावदृढता(त्वा)त् (?), यतः “एजइ मंडलेण भसियं” इत्यादिप्रामाण्यात् । श्वकल्या(?) अरयः, भीर्भयं सप्तविधं, रणभरो- युद्धभरस्तेषामा- सामस्त्येन इ[ः]- खेदः, पर(ए?):- कामः, श्वारयश्च भीश्च रणभरास्च एवश्च(?) श्वारिभिरणभरैराः, वि- विगताः श्वारिभीरणभरैरा यस्मात् स विं, तस्य सं० हे विश्वारिभीरणभरैर! । अत्र अव्यया-ऽनव्ययशब्दयोर्मिश्रभजने समासेऽनुचितं मन्यन्ते केचित् । परं बहुलमिति प्रयोगवशाद् भवति एव, तथापि महत्कवीन्द्रप्रणीतग्रन्थेषु दृष्टत्वादानीतमस्ति, [न] दूष्यम् । हे पर!- ईदृग्गुणश्रेष्ठ! । हे अजित!- हे अजितनाथ! जिन! । भवान् मे शं स्तात् ॥३॥

देवेन्द्रसेवित! विपाप! युगादिनाऽथ,  
विश्वारिभी रणभरैरपराजित! स्तात् ।  
नेतः! श्रियां परपदाश्रय! शम्भवाऽन्मे,  
श्रीवीतराग! शमितान्तिनिवारकाख्य! ॥

[व्याख्या -] हे देवेन्द्रसेवित!, हे विपाप!, हे अपराजित!-  
अपराभूत!, केन? युगादिना, परतीर्थसम्बधिदेवेनेति गम्यम् । जात्येकवचनं,  
युगेषु कृतादिषु, अः कृष्णः, अ ब्रह्मा, तदादिपरशासनीयैर्देवत्वमुद्राचिह्नगुणादिभिन्न  
निराकृत इति तत्त्वम् । अथ अन्तरार्थे । कै? ? विश्वारिभिर्विश्वैः समस्तैर्वैरिभिः ।  
पुनः कै? ? रणभरैः, यतो भगवत्स्तु सिद्धिं समेतस्य अभिभवं विधातुं न  
समर्था एव ते । हे परपदाश्रय!, हे श्रीवीतराग!, हे इतान्तिनिवारकाख्य!,  
इः- कन्दर्पः, तान्तिः- ग्लानिस्तन्तिनिवारका आख्या यस्य स इ०, तस्याऽम० ।  
हे शंभव!, हे श्रियां नेतः! श्रीकारवन्निति ना(भा?)वः । बहुवचनं भृशार्थबाधकं  
जिनेन्द्रस्य श्रीकारवर्णनं भृशमेव जाघटीति । इयताऽह - श्रीशंभवजिन! त्वं  
मे शं स्तात् । किंलक्षणस्त्वम् ? आद्- आ- तापो भवसम्बन्धी तं अति  
इति आद् । तन्निवारक इत्यभिप्रायः ॥४॥

देवेन्द्र! सेवित! विपापयुगाऽदिनाथ!,  
विश्वारि भीरणभरैरपराजित! स्तात् ।  
नेतः! श्रियां परपदाश्रय! शं भवान्मे,  
श्रीवीत! रागशमितां ति निवारकाख्य! ॥

[व्याख्या -] हे देवेन्द्र! तत(देवतति?)सेवित!, पूजितत्वात् । हे  
विपापयुग!, विगतः पापोपलक्षितो युगः- कलियुगो यस्मात् स विपापयुगः ।  
हे अदिनाथ! डुर्दा छ्वेदबन्धयोरिति दाशब्देन छ्वेदोऽङ्गोपाङ्गादीनां सापराधत्वेन  
राजादिकृतः अथवा बन्धो रज्ज्वादिभिः न विद्यते येषां तेऽदिनोऽर्थाद् देवा  
वैक्रियशरीरित्वेन तदयोग्यत्वात् तेषां नाथः । अत्र देवै० एतद्विशेषणस्याऽस्य  
समानार्थत्वेन दूषयिष्यन्ति केचित् परतन्त्रदेवेन्द्रा वा सर्वसवाएवा(?) ग्राह्या,  
अत्र देवा, देवैरपि इन्द्रैरपि मानिता इति ज्ञेयम् । एवमपुनरुक्तिः । हे अपराजित!,  
कै? ? भीरणभरैः, कथम् ? यथा स्यात् विश्वारि, विगत[:] श्व(श्वा)-  
कल्यारि यथा भवति क्रियाविशेषणमिदं, प्रनष्टारे! इति भावं(वः) । हे नेतः! ।

हे श्रियां प० । हे रागशमिताइंत(तामित)!, रागस्य शमो विद्यते यस्य [स] रागशमीनो (०शमी, तस्य) भावः रागशमिता, भावे तल् प्रत्ययः, तां प्राप्त[ः], नीराग इति भावः । अथ नामारोपणा - हे तिनि(हे नि)वारकाख्य!, नितरां वारः- समूहो यस्मिन् तद् निवारं प्रचुरमिति तत्त्वं, निवारं- प्रचुरं कं- सुखं यस्याः सा निवारका, निवारका आख्या यस्य स०, तस्याऽमन्त्रणम्० । ति । सिद्धहेमे परपदाश्रय!, मकारपरः प्रकृष्टः स्याद्यन्तादिपदाश्रयो यस्य यत्र वा सा 'मति' जातम् । हे सेवित!, सकारस्य इः- शोभा यस्मिन् स सेः, सेर्व उस्तमित[ः]- प्राप्त[ः] प्रकार उच्चारहेतुः, सुयुक्त इति भावः । सुमति । हे श्रीवी!, श्रीकारो विशेषण ई- प्रत्यक्षो यत्र स०, तस्याऽमं०, आमन्त्रिणी सि, अव्ययत्वाद् लुप् । इयताऽह श्रीसुमति इति सुखदायकाख्य! जिन! भवान् शं स्तात् भक्ताना-मिति गस्य(गम्यम्) ॥५॥

देवेन्द्रसेवित! विपापयुगा! दिनाऽथ,  
विश्वारि भी! रणभरैरपराजित! स्तात् ।  
नेतः! श्रियां परपदाऽश्रय! शं भवान्मे,  
श्रीवीत! रागश! मिताऽन्तिनिवारकाख्य! ॥

व्याख्या - हे दिन!, दकारो विद्यते यस्याऽसौ दी, इन्प्रत्ययः, दी चाऽसौ नश्च दिनस्तस्य सम्बो०, पदेने(दिने)ति निष्पन्नम् । हे मिति!, मकारं प्राप्त! । हे नेत!, 'न'इति वर्णेन ई- प्रक्षाख्याता शोभा यस्मिन् स नेतस्तस्याऽमन्त्रणम् । नम्दन, 'तौ मुमोर्वञ्जने स्वौ', अनुस्वारः, 'नन्दने'ति सिद्धम् । हे भी!, भि-इत्यक्षरम् ई- सन्निधौ यस्य स भी, तस्य सं०, आमन्त्रिणी सि, अव्ययत्वाद् लुप् । 'भिनन्दनं' जातम् । हे आश्रय!, अकारस्य आश्रयो यत्र स०, 'अभिनन्दन'रूपसिद्धिः । हे श्रीवीत!, श्रीकारं विशेषण प्राप्त! । हे श्रीअभिनन्दनजिन! भवान् मे शं स्तात् इति क्रियासम्बन्धः । अथाऽमन्त्रणेन विशेषणानि - हे देवेन्द्रसेवित!, हे विपापयुगा!, विगतः पापयुगो बहुपापप्रवृत्तिमयो युगः कलियुगस्तस्य य आः- सन्तापो यस्मात् स०, तस्य सम्बोधनम् । जिनातिशयाद् दुष्टयुगचेष्टिं न बाधते इति भावः । अथ आनन्तर्यार्थः । हे विश्वारि यथा भवति तथा । रणभरैः अपराजित!, रणे भा- दीप्तिर्येषां सामर्थ्यगर्वप्रोद्भूतोत्साहादकातरत्वेन, रणभाश्च ते राश्च रणभरास्तैः

सुभटनरैरनभिभूत! । हे श्रियां परपद! । हे रागश!- रागोच्छेदक! । अन्ति-  
निवारकाख्य!, अन्ती- संसारान्तवान्, सिद्धत्वं प्राप्त इत्यर्थः, निवारका-  
प्रचुरसुखकरा आख्या यस्य स०, अन्ती चाऽसौ निवारकाख्यश्च विशेषणद्वय-  
कर्मधारयः ॥६॥

देवेन्द्रसेवित! विपा! पयुगाऽऽदिनाऽथ,  
विश्वारिभीरण! भ! रै रपराऽजित! स्तात् ।  
नेतः! श्रियां परपदाश्रय! शं भवान्मे,  
श्रीबीत! राग! शमितान्तिनिवारकाख्य ॥

व्याख्या - हे भा!, हे रपरोऽग्रेतनः रपरस्तस्य सं०, 'रभ' सिद्धम् ।  
हे विपा!, विशेषेण पकारस्य आ- अवधारणं यस्मिन् स०, सं०, 'प्रभे'ति  
जातम् । हे मे!, मकार ई- समीपे यस्य स 'मप्रभ' इति रूपव्युत्पत्तिः । हे  
आद!, आ- सामस्त्ये वाक्ये वा द्- दकारो यस्मिन् स० । 'दमप्रभ'  
निष्पन्नम् । हे पयुग!- पकारयुक्त!, 'पदप्रभ' । हे श्रीबीत! । इयता हे  
श्रीपद्यप्रभजिन! भवान् शं स्तात्, 'त्वदाराधकाना'मित्युक्तियुक्तिः । हे दे०!,  
हे इन!- स्वामिन्! । अथोऽनन्तरतायाम् । हे विश्वारिभीरण!, श्वकल्यारिभीस्तया  
ईरण- कम्पनं श्वारिभीरणं, विन्नतं श्वारिभीरणं यस्मात् स० । हे रैः- अपरैः  
सामान्यनरैः अजित!, अतुलबलत्वात् । हे श्रियां नेतः! । हे परपदाश्रय! ।  
हे राग!, रं- कामं न गच्छति- न प्राप्नोति- न तदाश्रयवशमेति रागः,  
कामविक्रियाऽबाधित इति भावः । हे शमितान्तिनिवारकाख्य! । इति वृत्तार्थः  
॥७॥

देवेन्द्र! सेवित! विपापयुगाऽऽदिनाऽथ!,  
विश्वारिभीरणभरैरपरपराजित! स्तात् ।  
नेतः! श्रियां परपदाश्रय! शं भवान् मे,  
श्रीबीतराग! शमिताऽतिनि! वाऽर! काख्य! ॥

हे व! । शमित!- शकारं प्राप्त!, 'श्व' सिद्धम् । हे काख्य!, केन-  
सुखेन- अप्रयासेन आख्या- प्रकथनं यत्र स० । कस्य ? अरः, अर इति  
वर्णविज्यासस्य अरः(?) । अत्र "नाऽनुस्वारविसर्गौ तु चित्रभङ्गय सम्पतौ"  
इति शास्त्रप्रामाण्या[दनुस्वार-]विसर्गयोर्न दोषः । इह बहुर्थाविर्भावनं चित्रं

ज्ञेयम् । ‘अश्वे’ति निष्पादितम् । हे अर्श! किंविशिष्टरूपम् ? विपापः, विशेषणं(विशेषेण) पकारस्य आपः प्राप्तिर्यत्र स विपापः, प्रथमैकवचनं सि, सौरुः सरार्थरयस्वार वा (‘सो रुः’ - स → र, ‘रोर्यः’ - र → य, ‘स्वरे वा’) अत्र सूत्रे विकल्पसद्बावात् न यलोपः, पअर्श, ‘समानानां तेन दीर्घः’, ‘पार्श्व’ निष्पन्नम् । हे उग!, उकारं गच्छति ई (इति) उगस्तस्याऽ । उपार्श्व । हे सेवित!, सस्य इः- शोभा, तस्या ऊ- रक्षणं इत- प्राप्त!, अकार उच्चारणार्थः, सयुक्त इत्यर्थः । ‘सुपार्श्व’ सिद्धम् । हे देवेन्द्र! । हे अदिनाथ!, दाशब्देन च्छेदः, छ(?)विना तथा एकेन्द्रियतनस्पतिमपुष्पफलादीनां न विद्यते येषां षड्जीवनिकायारम्भप्रत्याख्यानेन सर्वतो विरतत्वात् अथवा दा बन्धनं स्त्रीपुत्रपौत्रगृहधनधान्यसुवर्णादिपरिग्रहविमोहितत्वेन अथवा बन्धो राजाद्यादेश-वर्तित्वलक्षणः, यतः “स्वैरं विहरति स्वैरं शेते स्वैरं च जल्पति” इति वचनात्, पुनरप्यबन्धः कर्मणा न विद्यते येषां ते अदिनः, यद्यपि सिद्धिगमनं विना कर्मणामबन्धकत्वं न स्यात्, परं तथाप्यनारम्भित्वेन सर्वनिवृत्तः बन्धस्य अल्प्यतेया(अल्पतया) असत्तैव विशेष्यते यथा - सदसत्संशयगोचरो दोरी(?) इति वर्णनवत्, इयताऽदिनः छेदबन्धरहिता यतय एव तेषां नाथ! । हे विश्वा० अपराजित! । हे श्रियां नेतः! । हे परपदाश्रय! । हे श्रीवीतराग! । भवान् मे । अतिनि, अतिक्रान्तक्षयमक्षयं यथा स्यात् । इति वृत्तार्थः ॥८॥

देवे द्रसेवित! विपाऽपयुगाऽदिनाथ!,  
विश्वारिभीरणभ! रै र! परा! जितः स्तात् ।  
नेतः! श्रियां परपदाश्रय! शं भवान्मे,  
श्रीवीत! रागश! मिताऽतिनिवारकाख्य! ॥

व्याख्या - हे भ! । हे रैर रकारस्य परः आ सामस्त्येन इरणं- प्रापणं यत्र स रैर(?), तस्य सं० । ‘रभ’ इति रूपनिष्ठतिः । हे विप!, विशेषेण पः पकारो यत्र तत् । अकार उच्चारणप्रयोजनपरः । हे द्रसेवित!, द्रयुक्त! । ‘द्रप्रभ’सिद्धिः । हमव (हे मित! ?), म्-इत्यक्षरं प्राप्त! । हे आदिनाथ!, कस्मात् ? जितः, जो जकारः समीपे एकवर्गे वा विद्यते यस्य स जी इत्यर्थः, तस्मात् जितः, पञ्चम्यास्तस्, “नाम सिद्यव्यञ्जने” - पदसञ्जा, “नामो नोऽनहः” इति सूत्रेण जिन्-नलुप् जितः, जकारादादौ नं- ज्ञानं यस्य स

आदिनः, अर्थाच्चकार एव, तस्य आ- अवधारणे थो- रक्षणं यस्मिन् स आदिनाथस्तस्याऽमन्त्रणं - हे आ० । चम्द्रप्रभ । “तौ मु०” - अनुस्वारः । हे श्रीवीत!, श्रीकारं विशेषेण प्राप्त! । ‘श्रीचन्द्रप्रभजिन’ नाम निष्पन्नम् । हे अपयुग!, अपगतो युगः कलियुगो यस्मात् स, तस्य सं० - हे अ०, भवत्प्रभावात् कलिकालकल्पिता(त)दुष्टचेष्टितानि न स्युः इति तत्त्वम् । हे विश्वारिभीरणभ!, विगत(त) स्वतुल्य(श्च कल्य?) वैरिभयकम्पना भा- दीपिर्यस्य स विश्वारिभीरणभः तस्या० । हे परा!, परं- प्र[कर्षण] आ- स्मरणं यस्य स परा, तस्य सं० । अव्ययम् । कस्मितः(कस्मिन्)? देवे- सुरे, जात्येकवचनं, देवानां स्मरणीय!- पूजनीय! इति तत्त्वम् । हे श्रियां नेतः!, हे परपदाश्रय!, हे रागश!, प्राग्वत् । हे अतिनिवारकाख्य!, अति- अत्यर्थ निवारका- प्रचुरसुखकरा आख्या यस्य सः, त्वन्नामग्रहणेनाऽपि सुखसम्पदः स्युः । भवान् मे शं स्तात् ॥१॥

देवेन्द्र! से! वित! विपापयुग! आदिनाऽथ!,

विश्वारिभीरणभरैरपराजित! स्तात् ।

नेतः! श्रियां परपदाश्रय! शं भवान्मे,

श्रीवीतराग! शमितान्तिनिवारकाख्य! ॥

व्याख्या - हे आदिनाथ!, आदिन! आथ!, आदिनाद् यः स आदिनो धकारः, आकारस्य थो- रक्षणं समीपवर्तित्वेन यस्मात् स आथ, इकार एवेत्यर्थः । आदिनात् आथः आदिनाथ, तस्य सं० हे आ० । धकारात् पुरः इः, धइ, अवर्णस्याएतेनस्युनेण एत्वम् (?), एतावता हे धेह! । हे वित!, वि- वर्णस्य ता- शोभा यत्र स वितस्त० । ‘विधे’ सिद्धम् । हे उग!, उकारं प्राप्नोतीति उगस्तस्त० । उविधे । हे उविधे! किंलक्षणस्त्वम् ? इ- प्रत्यक्षः, केन ? सा, र(स)कारेण । ‘सुविधे’ इति जातम् । भवान् मे शं स्तात् । कथम्भूतो भवान् ? विपापः- पापरहितः । हे देवेन्द्र!, हे विश्वारिभीरण- भरैरपराजित!, हे नेतः!, हे परपदाश्रय!, कासाम् ? श्रियाम् । हे श्रीवीतराग!, हे शमितान्तिनिवारकाख्य!, इति सम्बोधनैर्विशेषणानि । वृत्तार्थः ॥१०॥

देवेन्द्रसे! वित! विपाप! युगादिनाऽथ,

विश्वारिभीरणभरैरपराजित! स्तात् ।

नेतः! श्रियां परपदाश्रय! भवान्मे:-  
श्रीबीत! रागशमितान्तिनिवारकाख्य! ॥

व्याख्या - हे रपर!, रात् परः- अग्रेसर 'यरलवे'ति मातृकापाठोच्चारानु-  
क्रमतः, ततो रपरो लकारस्तस्याऽम० । हे ल०!, हे वित!, विशेषण 'त' इति  
वर्णे यस्मिन् स वितस्तस्य सं० । 'तले'ति जातम् । हे अर्श्रीबीत!,  
रहित 'श्री'इति वर्णस्तं प्राप्त!, 'र'विना श्री शीः स्यात् । हे शीतलजिन!  
सिद्धम् । मे अग्रे अर्श्री(?), "एदोतः पदान्तेऽस्य लुक्" अनेन सूत्रेण लोपः,  
"रः पदाऽ" अनेन रविसर्गः । हे देवेन्द्रसे!, देवेन्द्रस्य सा- लक्ष्मी ई-  
प्रत्यक्षस्वरूपशानदृग्गोचरत्वात् तत्पूज्यत्वाद् यस्य स देवेन्द्रसे आम०, अव्यय० ।  
विपाप । युगे- कृतादौ आदिना- परतीर्थिदेवेनाऽथ विश्वारि० अजित- न  
निराकृत! । हे नेतः! । हे श्रियां परपदाश्रय!, हे रागशमितान्तिनिवारकाख्य!,  
रागस्य शमो विद्यते येषां, इन् प्र०, ते नीरागा युतयस्तेषां तान्तिनिवारका आख्या  
यस्य स रा०, तस्याऽम० । भ...

—X—

## વर्तुपालसम्बन्धी २ प्राचीन ऐतिहासिक प्रशस्तिओ

— सं. मुनि सुयशचन्द्रविजय गणि  
मुनि सुजसचन्द्रविजय

प्रशस्तिकाव्यो ए संस्कृतसाहित्यनो घणो रोचक काव्यप्रकार छे । घणुं करीने अलङ्कारिक शैलीमां रचाती आ कृतिओमां इतिहासप्रसिद्ध व्यक्तिना जीवननो अने कार्योनो परिचय होय छे । तेथी आ प्रशस्तिकाव्यो इतिहासना संयोजनमां बहुमूल्य फाळे आपे छे ।

मुख्यतया प्रशस्तिकाव्यो २ स्वरूपे प्राप्त थाय छे (१) चैत्यप्रशस्तिस्वरूपे तथा (२) ग्रन्थप्रशस्तिस्वरूपे ।

तेमां चैत्यनो, वसतिनो के तेना खण्डस्वरूप मण्डप, बलानक, शिखर, गर्भगृह के देवकुलिका ना नवनिर्माण के पुनरुद्धार करावनार व्यक्तिना जीवन अने कार्य उपर प्रकाश करनार कृति ते चैत्यप्रशस्ति । आ प्रकारनी प्रशस्तिओ ते गुणवान पुरुषना (दाताना) गुणथी आकर्षित थनार कोई गुरुभगवन्त के विद्वान कवि द्वारा रचवामां आवती हती । त्यारबाद शिलाखण्ड उपर कोतरवामां आवती हती । शत्रुञ्जय गिरिराज उपर रामपोळ पासे लागेल २ शिलालेखो, आबुतीर्थ-लुणिगवसहिनी हस्तिशाळामां लागेल शिलालेख, अेवा शिलालेखो आ प्रकारमां समाविष्ट थाय छे ।

ते ज रीते ग्रन्थलेखनना कार्यमां अर्थसहयोग आपनार अर्थात् ग्रन्थ लखावनार गृहस्थना जीवन अने सुकृतोनो परिचय आपनार काव्य ते ग्रन्थप्रशस्ति । ग्रन्थनी आदिमां के अन्तमां कागळ उपर के ताडपत्र उपर आ प्रशस्तिओ लखवामां के कोतरवामां आवती हती । प्राचीन ताडपत्रीय ग्रन्थोमां तेमज हस्तप्रतोमां आवी प्रशस्तिओ लखायेली जोवा मळे छे ।

उपरोक्त बत्रे प्रकारनी प्रशस्तिओमां प्रतिष्ठापक गृहस्थ के ग्रन्थ लखावनार गृहस्थना जीवन अने कार्योनी साथे तेमनी वंशपरम्परानो, तेमनां कार्योनो पण परिचय आपवामां आवतो हतो । वधुमां चैत्यप्रशस्तिओमां चैत्यादिनिर्माणसमये विद्यमान शासकनो, ते शासकना वंशनो, प्रतिष्ठाकारक पूज्य आचार्यादिनो, तेमनी गुरुपरम्परानो अने चैत्यनिर्माणना वर्षनो पण उल्लेख करवामां आवतो हतो ।

ग्रन्थप्रशस्तिओ अने चैत्यप्रशस्तिओ संस्कृतभाषाबद्ध गद्य-पद्यमय रहेती । अने ग्रन्थप्रशस्ति करतां चैत्यप्रशस्ति प्रमाणमां वधु मोटी रहेती हती ।

अहीं रजू करेल बने प्रशस्तिओ चैत्यप्रशस्तिरूपे प्राप्त थई छे । तेमां (१)

शत्रुञ्जयस्थित इन्द्रमण्डपनी प्रशस्ति (२) गिरनारमां वस्तुपालकारित शत्रुञ्जय (शत्रुञ्जयावतार) चैत्यनी प्रशस्ति छे । हाल बने प्रशस्तिओं त्यां शिलालेखरूपे जोवा मळती नथी, पण तेनी कागळ पर उतारेल नकलस्वरूपे प्राप्त थाय छे ।

वर्तमानमां प्राप्त वस्तुपालसम्बन्धी प्रशस्तिओंमा आ बने मोटी अने विशेषविगतो धरावती होवाथी घणुं महत्त्व धरावे छे । ते बने रचनाओ एक ज कर्ता श्रीबालचन्द्रसूरिजीनी होवानुं गौरव पण राखे छे ।

चन्द्रगच्छना नायकश्री देवेन्द्रसूरिजी → भद्रेश्वरसूरिजी → अभयदेवसूरिजी → हरिभद्रसूरिजीना शिष्य बालचन्द्रसूरिजी.

प्रस्तुत बने कृतिमां बालचन्द्रसूरिजी गुरुपरम्परा उपर मुजब जोवा मळे छे । तेमना जीवनचरित्र विशे केटलीक माहिती आपणने तेमना ज बनावेल 'वसन्त-विलासकाव्य'मांथी प्राप्त थाय छे ।

मोढेरक(मोढेरा) शहरमां धरादेव नामनो ब्राह्मण हतो । तेने विद्युत् नामनी पती अने मुंजाल नामे पुत्र हतां । मुंजाल गृहस्थास्थामां पण वैराग्यवासित चित्तवाळो हतो । अनुक्रमे तेने हरिभद्रसूरिजीनो समागम थयो । पूज्यश्रीनां वचनो सांभळी वैराग्यथी मात-पितानी आज्ञा लई तेणे तेमनी पासे 'बालचन्द्र' नामथी दीक्षा ग्रहण करी हती । थोडा समयमां ज ते सर्वविद्यामां पारंगत थई गयो । 'पद्मादित्य' नामना विद्वान प्रभावक साधु अेमना विद्यागुरु हता । अन्तसमये हरिभद्रसूरिजीए तेमने पोतानी पाटे स्थापित कर्या हता ।

वादिदेवसूरिगच्छना उदयप्रभसूरिजी पासेथी तेमणे 'सारस्वतमन्त्र' प्राप्त कर्यो हतो । एकवार ते मन्त्रनुं ध्यान करता तेमने योगनिद्रामां सरस्वतीदेवीए दर्शन अने कवित्वना आशीर्वाद आप्या हता । साथे तेमने पुत्र तरीके स्वीकार्या (संबोध्या) हता । तेमना आचार्यपदप्रसंगे महामन्त्री वस्तुपाले १००० (एक हजार) द्रम्म खर्च्या हता ।

प्रस्तुत बे प्रशस्ति सिवाय बालचन्द्रसूरिजीए 'करुणावज्रायुध' नाटकनी, तथा आसड कवि कृत 'विवेकमञ्जरी' अने 'उपदेशकन्दली'नी टीकानी रचना करी छे ।

### प्रशस्तिपरिचय :

( १ )

इन्द्रमण्डपप्रशस्तिः

आ प्रशस्ति कुल १३८ पद्योनी छे । तेमां श्लो. १ थी ८मां कविए

मङ्गल कर्यु छे । श्लो. ८मां कविए शत्रुञ्जयतीर्थना अधिष्ठायक श्रीकपर्दीयक्षने श्रीसङ्घनी (जगतनी) रक्षा करवानी प्रार्थना करी छे । साथे कविए पोतानुं नाम पण गुम्फित करी दीधुं छे.

त्यारबाद श्लो. ९थी ६९ना विशाळ काव्यखण्डमां कविए चौलुक्यवंशना राजाओनुं वर्णन कर्यु छे । तेमां श्लो. ४६मां मुरजबन्ध-चित्रकाव्यनो प्रयोग जोवा मळे छे । अने श्लो. ४७मां पद्यरचना ए रीते करी छे के ते काव्यनां चारे चरणना प्रथम ४ शब्दो आडा के ऊभा, गत-प्रत्यागत क्रमे वांचो तो ते ज श्लोक उकेलाय । कविनी असामान्य काव्यप्रतिभानां दर्शन आ पद्यमां थाय छे—

र	ता	म	रा
ता	र	हा	स
म	हा	सि	का
रा	स	का	न

श्लो. ७० थी ९१मां कविए वाधेला वंशना राजाओनी शूरवीरतानुं अने कीर्तिनुं वर्णन कर्यु छे । उपरोक्त बन्ने काव्यखण्डो खूब रसाळ अने प्रौढशैलीमां रचायेला छे ।

श्लो. १२ थी १०३मां कविए वस्तुपाल-तेजपालना वंशनो परिचय आप्यो छे । पण आश्वर्यनी वात ए छे के आ पद्योमां क्यांय वस्तुपालना पिता 'आसराज(अश्वराज)'ना नामोल्लेखवालुं पद्य प्राप्त नथी । सम्भवतः ए पद्य मूलप्रतनी प्रतिलिपि करती वखते के प्रशस्ति-शिलालेखना उतारा वखते लखतां छूटी गयुं जणाय छे । बीजी नोंधनीय वात ए पण छे के प्रस्तुत कृतिमां कुमारदेवीने ३ पुत्र (मल्लदेव-वस्तुपाल-तेजपाल नामथी) होवानुं जणाव्युं छे ज्यारे आ ज कर्तानी अन्य कृति 'रैवताचलप्रशस्ति' (अधि. २ श्लो. १३-१४-१५)मां 'लूणिक' साथे चार पुत्र कह्वा छे, जे सौथी ज्येष्ठ छे । आ ज कर्ताए 'वसन्तविलासमहाकाव्य'मां पण वस्तुपाल आदि ३ पुत्रो ज कह्वा छे । अेक ज कर्तानी कृतिओमां आबो हकीकतभेद केम थयो हशे ?

प्रछीनां ३ पद्योमां (श्लो. १०४ थी १०६) कविए तेजपालना अने श्लो. १०७ थी ११३मां वस्तुपालना गुणेनुं वर्णन कर्यु छे । तेमां स्तम्भतीर्थनी रक्षा माटे सिन्धुराजना पुत्र शङ्खराजा साथे थयेल युद्धमां वस्तुपालना शौर्यगुणनो पण परिचय आप्यो छे ।

श्लो. ११४ थी १२६मां (मात्र) वस्तुपालनां केटलांक सुकृतोनी नोंध आपी छे । जेमके (१) गामे-गामना सङ्घोने भेगा करी शत्रुञ्जय अने रैवतगिरि (गिरनार)नी तीर्थयात्रा करी ।

(२) धोळकामां हिमालय जेबुं उजबुं श्रीआदिनाथप्रभुनुं जिनालय बनाव्यु ।

(३) स्थम्भनक(खंभात)ना शक्रपुर(शक्रपुर)मां श्रीपार्ष्वप्रभुना जिनालयनो जीर्णोद्धार कर्यो अने तेना पर स्वर्णकलशो स्थापित कर्या ।

(४) अणहिल्लपुर-(पाटण)मां श्रीपंचासरापार्ष्वप्रभुना जिनालयनो जीर्णोद्धार कर्यो ।

(५) स्थम्भनकपुर(थामणा)मां नगर फरतो कोट बनावडाव्यो ।

(६) अनेक पौषधवाळाओ करावी अने साते क्षेत्रमां धन वापर्यु ।

(७) अर्कपालीयक(अंकेवाळीया) गामां विशाळ सरोवर निर्माण कराव्यु ।

(८) शत्रुञ्जय उपर इन्द्रमण्डप बनावडाव्यो । अने शत्रुञ्जय उपर श्रीनेमिनाथ तथा श्रीपार्ष्वनाथ प्रभुनां २ देरासरो कराव्यां । आ बने हकीकतोनी नोंध उदयप्रभसूरिजीकृत 'सुकृतकीर्तिकल्लोलिनी' (श्लो. १६५-१६७) तथा जयसिंहसूरिजी कृत 'वस्तुपाल-तेजःपाल-प्रशस्तिः' (श्लो. ६१)मां पण नोंधायेली जोवा मळे छे ।

श्लो. १२९-१३०-१३१मां कविए इन्द्रमण्डपनी प्रतिष्ठा करावनार, वस्तुपालना कुलगुरु (गुरु भ.)नी परम्पराना श्रीशान्तिसूरिजी अने श्रीअमरसूरिजीने याद कर्या छे, ते ध्यानार्ह बाबत छे ।

अन्ते श्लो. १३२ थी १३८ना पद्योमां कविए पोतानी गुरुपरम्परानी स्तवना करी छे । अने पोताना नामोल्लेखपूर्वक प्रशस्तिना चिरंजीविपणानी

अभ्यर्थना करी छे ।

प्रस्तुत कृतिनी हस्तप्रत तपागच्छनायक श्रीजयचन्द्रसूरिजीना शिष्य पण्डित श्रीजिनहर्षगणिना शिष्य 'सिद्धान्तधर्म' नामना मुनिए सं. १५१८मां लखी छे ।

श्रीविमलगच्छीय उपाश्रयनो भंडार (देवसानो पाडो-अमदावाद)मांथी प्रस्तुत कृतिनी हस्तप्रतनी Xerox सम्पादनार्थे प्राप्त थई छे । ते बदल विमलगच्छीय ग. प.पू.आ.श्री प्रद्युम्नविमलसूरिजी म.सा.नो, पू. जम्बुविजयजीना शिष्य पू.पं. पुण्डरीकविजयजी म.सा.नो, हिरेनभाई पण्डितजी (पालीताणावाळा)नो तथा विमलगच्छीय भण्डारना कार्यवाहकोनो खूब-खूब आभार ।

( २ )

वस्तुपालप्रशस्ति :

प्रस्तुत कृति पण कवि बालचन्द्रनी ज रचना छे । कृतिमां अनुक्रमे वंशाधिकार, शान्तज्ञयाधिकार विगेरे १३ अधिकारो छे । दरेक अधिकारमां वस्तुपाले ते ते क्षेत्रमां करेला जिनमन्दिर, उपाश्रय, सत्रागारादि ऐतिहासिक कार्योनी विगत छे । तेमां य, खास करी पेटलाद, ध्वेळका, धंधुकादिकना अधिकारमां वर्णवायेली विगत इतिहासविदो माटे घणी महत्त्वपूर्ण छे । कवि जिनहर्षे सं. १७९३मां रचेला वस्तुपालचरित्रमां आ ज प्रशस्तिमांथी घणा श्लोको उद्धर्या होय तेम लागे छे । अमे प्रस्तुत कृतिमां तुलना माटे वस्तुपालचरित्रना ते श्लोकक्रमाङ्क पण नोंध्या छे ।

प्रतमां उल्लेखित सूत्रधार साल्हण द्वारा प्रशस्ति उत्कीर्ण करायानी विगत जोतां मूळ शिलालेख परथी ज आ कृति ताडपत्र के कागळनी प्रतना उतारारूपे लखाई होवानुं अनुमान थाय छे. जो के अक्षरोना मरोडादि उपरथी कृतिनुं लेखन पण १६मी सदी पूर्वे थयुं होय तेवुं जणातुं नथी. एटले के आ प्रतलेखकनी सामे जिनालयनो मूल शिलालेख न होई कागळनी के ताडपत्रनी कोई हस्तलिखित प्रत होय तेवुं मानवुं वधारे योग्य लागे छे । खास तो आवा अमूल्य दस्तावेजने आपणा सुधी पहेंचाडवा बदल ते-ते प्रतलेखकोनो, साथे-साथे प्रतनी हस्तप्रत साचवी राखवा बदल तेमज सम्पादनार्थे तेनी नकल

आपवा बदल श्रीविजयगच्छ जैन ज्ञानभण्डार (राधनपुर)ना व्यवस्थापकश्रीनी तेमज बाबुभाई (बेडावाळा) विगेरे सुश्रावकोनी श्रुतभक्तिनी खूब अनुमोदना।

### कृतिकार :

आगळनी प्रशस्तिमां जोया मुजब अहीं पण कविनी गुरुपरम्परा ते ज मुजब आलेखायेली छे. विशेषमां तेमणे प्रशस्ति-रचनामां सहाय करनार प्रद्युम्नसूरिजीनी परम्परानो करेलो उल्लेख जोवा मळे छे. देवानन्द मुनीद्वना गच्छना कनकप्रभसूरि, तेमना शिष्य प्रद्युम्नसूरि के जेओए कवि बालचन्द्रसूरिनी पासेथी पद प्राप्त कर्यु हतुं.

**कृतिनी ऐतिहासिक विगतोनो टूंक सार**

**वस्तुपाल वंश परिचय**

**प्राग्वाटवंशीय चण्डप**

**चण्डप्रसाद (जयत्री)**

**सौर**

**सोम सीता (पत्नी)**

(आसराज)

अश्वराज

विजयराज

तिहुणपाल

केली (बहेन)

लूणिंग

मल्लदेव

वस्तुपाल

तेजपाल

लीलू

पातू

ललितादेवी

अनुपमादेवी

(पत्नी)

(पत्नी)

(पत्नी-१)

(पत्नी)

पूर्णसिंह (पुत्र)

जयन्तसिंह

बकुलदेवी

लूणसिंह

(पौत्र)

(पुत्र)

(पुत्री)

(पुत्र)

पेथड (पौत्र)

## कुमारदेवीना पियरपक्षनो परिचय

प्राग्वाट सामन्त आमदत्त

↓                    ↓

शान्ति            नागड

↓                    ↓

ब्रह्मनाग        आभू → लक्ष्मी (पल्ली)

↓                    ↓                    ↓

आमदत्त        धनपाल    पूर्णपाल    महिपाल    कुमारदेवी(बहेन)

## शत्रुञ्जयाधिकार

राजा विक्रमादित्यना (वि.सं.) १२७०मा वर्षथी प्रारम्भी चौलुक्यवंशना मन्त्री वस्तुपाले शत्रुञ्जय विगेरे गामोमां घणां सत्कार्यो कर्या.

श्लो.नं.

- ३ शत्रुञ्जयगिरि उपर [वस्तुपाले] इन्द्रमण्डपनी रचना करी.
- ४ त्यां अम्बिका, अवर्लोकन, शाम्ब अने प्रद्युम्ना शिखरोथी शोभतुं नेमिनाथ प्रभुनुं चैत्य बनाव्युं.
- ५ त्यां पूर्वे करावेला स्तम्भन पार्थनाथप्रभुना चैत्यमां पोताना राजानी (वीरध्वल), पोतानी पल्लीनी (ललितादेवी), पोताना गुरुनी, पोताना भाईनी (तेजपाल) तथा पोतानी (वस्तुपाल) मूर्तिओ बनावी.
- ६-७ त्यां जयतल्लदेवीनी तथा वीरध्वल राजानी गजारूढ मूर्तिनी रचना करी अने पोतानी तथा पोताना भाईनी अश्वारूढ मूर्ति घडावी.
- ८ त्यां ज कायोत्सर्गस्थ २ जिनप्रतिमा अजितनाथ तथा शान्तिनाथनी – (कवि जिनहर्ष मुजब) पधरावी
- ९ त्यां मण्डपमां ७ जिनेश्वर परमात्मानी ७ देवकुलिका बनावी.
- १० त्यां सरस्वतीनी मूर्ति तेमज प्रशस्ति मूकावी.
- ११ इन्द्रमण्डपमां पश्चिम द्वारनुं तोरण कराव्युं.

- १२ आदिनाथ प्रभुना चैत्यनी आगळनी जग्यामां किल्ला सहितनी पोळ बनावी.
- १३ त्यां भगवानना स्नात्र निमित्ते गजपद नामनो कुण्ड बनाव्यो.
- १४ आदिनाथ प्रभुना जिनालयमां प्रवेश करवाना मार्गे डाबी तथा जमणी बाजुए जुदा जुदा मण्डपमां वडील बे भाई लूणिंग तथा मल्लदेवनी घोडा पर बेठेली मूर्तिओ स्थापन करावी.
- १५ ते बे मूर्तिनी डाबी तथा जमणी बाजुए प्रशस्तिथी युक्त सङ्घने रहेवा माटे समाजमण्डप बनाव्या.
- १६ आदिनाथ भगवानना (जिनालयनी) आगळ स्तम्भनी नीचे मल्लदेवना अस्थिने दाटी तेना उपर मल्लदेवनी मूर्ति स्थापित करी.
- १७ आदिनाथ प्रभुना [जिनालयना] द्वारा पर तोरणनी रचना करी.
- १८ ते तोरण पासे हाथीथी शोभती जगाती करावी.
- १९ त्यां आदिनाथ प्रभुना [जिनालय] पासे बे प्रशस्ति चतुष्किका (चोकी) करावी.
- २०-२१ आदिनाथ प्रभुना जिनालयमां प्रवेश करतां दक्षिण बाजुए पली ललितादेवीना पुण्यने माटे वस्तुपाले पोतानी पली ललितादेवी, ब्राह्मी (सरस्वती) तथा ब्रह्मशान्ति यक्षनी प्रतिमाथी युक्त वीरप्रभुं सत्यपुरावतार नामनुं जिनालय बनाव्युं.
- २२-२३-२४ तो उत्तर बाजुए पली सौख्यलताना पुण्यने माटे समवसरण, अश्व, समडी, वटवृक्ष, मुनियुग्म, जितशत्रु राजा, शिलामेघ राजा, वणिक, सुदर्शनादेवी, पोतानी तथा सौख्यलतानी मूर्तिथी युक्त मुनिसुव्रतस्वामीना. अश्वावबोधतीर्थनी रचना करी.
- २५ सत्यपुरावतार तेमज अश्वावबोधतीर्थ ए बने देरासरनी आगळ मोटी प्रशस्तिओ मूकावी तेमज बने देरासर उपर सुवर्णना ध्वज-दण्ड पधराव्या.
- २६ ते [जिनालय]नी आगळ दादा चण्डप अने चण्डप्रसादना पुण्यने माटे अजितनाथ तथा सम्भवनाथ भगवाननी मूर्ति पधरावी.

- २७ ते ज मण्डपमां पोतानी तेमज ललितादेवीनी मूर्त्तिने माटे उत्तरमुखी स्फटिक द्वारवाळी देवकुलिका करावी.
- २८ आदिनाथ प्रभुना चैत्यमां दक्षिण तथा उत्तर बाजुए चार चार चोकी करावी.
- २९ आदिजिन-चैत्य पर सुवर्णकलश बनाव्यो.
- ३० आदिनाथ प्रभुना चैत्य उपर पौत्र प्रतापसिंहना पुण्यने माटे त्रण मण्डपना त्रण सुवर्णना कुम्घ कराव्या.
- ३१ तेजपाले इन्द्रमण्डपनी पासे नन्दीश्वर नामनुं जिनालय बनाव्युं.
- ३२ तेनी पासे पोतानी ७ बहेनोना पुण्यनी वृद्धिने माटे ७ देवकुलिकाओ करावी.
- ३३ मल्लदेवनी पत्नी लीलू तथा पातू, पुत्र पूर्णसिंह, पौत्र पेथडना श्रेयने माटे चार तेमज श्रेष्ठि यशोराजना श्रेयने माटे ३ देवकुलिकाओ करी.
- ३४-३५ [तेमां] अनुपमादेवीनी तथा पोतानी पोतपोताना देहमान प्रमाणेनी आरसनी मूर्तिओ पधरावी.
- ३६ [अहीं] अनुपमादेवीन् पुण्यनी वृद्धि माटे 'अनुपमासर' नामनुं सरोवर तथा एक वाडी (बगीचो) बनाव्यां.
- ३७ ते सरोवरना किनारा पर कपर्दीयक्ष तथा अम्बिकादेवीना मन्दिर बनाव्यां.
- ३८ तळावना कपर्दीयक्षना मन्दिर माटे मार्ग बनाव्यो.
- ३९ शत्रुञ्जय पर्वत परना कपर्दी यक्षना भवननो जीर्णोद्धार कर्यो अने तेनी आगळ एक तोरण तथा प्रदक्षिणामां आरसनी जगती करावी, तेमज अहींना पार्श्वनाथ प्रभुना [जिनालयना] गभागारनुं द्वार तथा गोखलो कर्यो.
- ४०-४१ शत्रुञ्जयगिरिनी तळेटीमां रहेला वाग्भटपुरमां ललितादेवीना श्रेयने माटे 'ललितासर' नामे सरोवर बनाव्युं.
- ४२ ललिता सरोवरनी पाळ उपर सूर्यदेव, महादेव, सावित्री, वीर प्रभु, अम्बा तथा कपर्दि यक्षनां मन्दिरो बनाव्या.

- ४३ वाग्भटपुरनी अन्दर गुरुमूर्ति तथा प्रशस्तिथी शोभती बसति (उपाश्रय) बनावी.
- ४४ पुत्रना श्रेयने माटे वाग्भटपुरनी बहार प्रपा (परब) बनावी.
- ४५ आदिनाथ प्रभुनी पूजाने माटे पथ्थरथी बांधेला कूवाथी युक्त 'वस्तुपालगिरि' नामनी पुष्पवाटिका (बगीचो) बनावी.
- ४६ शत्रुञ्जयना मार्गना विभूषण समान वल्लभीना आदिनाथ प्रभुना चैत्यनो जीर्णोद्धार कराव्यो.
- ४७ त्यां एक कूवो अने परब कराव्या.
- ४८ वटवृक्ष, कूवो तथा मण्डपिका (बजार?) सहितनुं वालाक ('वाळाक'प्रदेश)नुं भण्डपद (भंडारिया?) गाम शत्रुञ्जयने आधीन कर्यु.
- ४९ वालाकना अंकेवाळिया गाम अने चौरोतरना वीरेज्य गामने शत्रुञ्जयने आधीन कर्या.
- ५० वीरेज्य गाममां वस्तुपालविहार, वस्तुपालेश्वर नामनुं शिवमन्दिर, परब अने सत्रागार कराव्या.
- ५१ अंकेवाळियामां वस्तुपाले पिताना पुण्यने माटे जिनेश्वरदेवनुं भवन (जिनालय), माताना पुण्यने माटे परब, पूर्वजोना पुण्यने माटे सत्रागार, पोताना पुण्यने माटे सरोवर, महादेवनुं मन्दिर तथा मुसाफरोने रहेवानां स्थानो विगेरे बनाव्यां.

### रैवताधिकार

- १-२ रैवताचलना शिखर उपर नेमिनाथ प्रभुना चैत्यनी पाछळ पोताना श्रेयने माटे 'वस्तुपालविहार' नामनुं आदिनाथ प्रभुनुं चैत्य बनाव्युं.
- ३ त्यां पोताना पूर्वज चण्डप तथा चण्डप्रसादना सुकृतने माटे अजितनाथ तथा वासुपूज्यस्वामिना बिम्बने पधराव्यां.
- ४ ते[चैत्य]ना रंगमण्डपमां चण्डप्रसादनी मोठी देहप्रमाण मूर्ति तथा वीरप्रभुनी तेमज अम्बिकानी मूर्ति बनावी.
- ५ ते [चैत्य]ना गर्भगृहना द्वार पासे दक्षिण तथा उत्तर बाजुए पोतानी

- तेमज नानाभाई(तेजपाल)नी गजारूढ मूर्तिओ स्थापित करी.
- ६-७ ते [चैत्य]नी डाबी बाजु ललितादेवीना श्रेयने माटे पोतानी, ललितादेवीनी तथा पूर्वजोनी मूर्तिओ सहित सम्मेतशिखरतीर्थनी रचना करावी.
- ८-९ ते[चैत्य]नी दक्षिण बाजु सौख्यलताना सुकृतने माटे पोतानी, सौख्यलतानी माता कुमारदेवीनी तेम ज बहेननी मूर्तिसहितनी अष्टापदतीर्थनी रचना करावी अने तेमां श्लोकबद्ध २ प्रशस्तिपट्टो कराव्या.
- १० वस्तुपालविहार, सम्मेतशिखर तथा अष्टापद - ए त्रणे चैत्योनां तेणे त्रण तोरण कराव्या.
- ११ वस्तुपालविहारनी पाछळ कपर्ददयक्षनुं मन्दिर बनाव्युं.
- १२ ऋषभदेवनी माता मरुदेवीनुं मन्दिर बनाव्युं अने तेमां जिनमातानी गजारूढ मूर्ति करावी.
- १३ नेमिनाथ प्रभुना चैत्यमां त्रण द्वारबाळा मण्डपमां सफेद आरसनां त्रण तोरणो बनाव्यां.
- १४ ते चैत्यनी उत्तर तथा दक्षिण बाजुए पिता आसराज तथा पितामह सोमनी घोडा पर आरूढ थयेली मूर्तिओ बनावी.
- १५ ते मूर्तिओनी पासे तेणे माता कुमारदेवी तथा दादीनी मूर्तिओ बनावी.
- १६ नेमिनाथ प्रभुना चैत्यनी त्रिकमां माता-पिताना श्रेयने माटे अजितनाथ तथा शान्तिनाथ भगवाननी कायोत्सर्गस्थ मूर्ति स्थापित करी.
- १७ (श्लोक त्रुटित छे.)
- १८ पांपा नामना मठनी पासे सरस्वतीनी मूर्ति, प्रशस्तिलेख तथा पूर्वजोना मूर्ति-युग्म सहितनी त्रण देवकुलिकाओ करी.
- १९ नेमिनाथ प्रभुना जिनालयना मण्डप उपर सुवर्णनो कळश पधराव्यो.
- २० अम्बिकादेवीना मन्दिरमां मण्डपनी रचना करावी अने त्यां आरस-पहाणनी जिनेश्वर प्रभुनी देवकुलिका बनावी.
- २१ अम्बिकादेवीनुं आरसपहाणनुं परिकर बनाव्युं.

- २२ अवलोकन, शास्त्र तथा प्रद्युम्न [शिखर] उपर पुरुषोंगी मूर्तिथी युक्त जिनेश्वर परमात्मानी त्रण देवकुलिकाओं बनावी.
- २३ पोताना दादा-दादी, माता-पिता तथा बहेन जाल्हा(जालू?)ना अस्थिने पृथ्वीमां दाटी रैवतदेवता(नेमिनाथ प्रभु)ना जिनालयनी आगळ स्तम्भो बनाव्या.
- २४-२५ तेजपाले उज्ज्यन्तगिरिनी नीचे संघना आवासने माटे दुकान, घर, परब, वाव तथा संघपतिना घरथी शोभतुं, श्रेष्ठ किल्लावाळुं 'तेजपालपुर' नामनुं गाम वसाव्युं.
- २६ त्यां पिताना श्रेयने माटे 'आशराजविहार' नामनुं चैत्य तेमज वसति (उपाश्रय) बंधाव्यां तथा नगरनी बहार माताना पुण्यने माटे 'कुमारदेवीसर' नामनुं सरोवर बनाव्युं.
- २७ पार्श्वनाथ प्रभुनी पूजाने माटे बगीचो 'बनाव्यो.
- २८ पोतानी नगरी अने वामनपुरीनी वच्चे मोटी वाव बंधावी.
- २९ वामनस्थली (वंथली)मां वसति (उपाश्रय) बनावी.
- ३० उज्ज्यन्तगिरिना मार्गनां इंधुमधुर (?) पुरीमां वीरधवल तथा जयतल्लदेवीना नामथी शिवमन्दिर, देरासर, धर्मशाळा, सरोवर अने परब बनाव्यां.
३१. वस्त्रापथमां आदिनाथ प्रभुनुं जिनालय अने कालमेघनो मण्डप बनाव्यो.
३२. (अर्थ स्पष्ट थतो नथी.)

### देवपत्तनाधिकार

- १-२ वस्तुपाले देवपत्तनमां (प्रभासपाटणमां) सोमनाथमहादेवनी जगतीमां राजा वीरधवलना श्रेयने माटे वीरधवलेश्वर तथा जयतल्लदेवीना श्रेयने माटे जयतल्लेश्वर महादेवनी स्थापना करी.
- देवपत्तनाधिकारना पद्य ३थी लई, स्तम्भतीर्थाधिकारना पद्य २८ सुधीनी प्रशस्तिनो सारांश अनुसन्धान ७०मां आप्यो छे, तेथी फरी तेनो उतारो कर्यो नथी.
- २७-३० आसराजविहार अने कुमारविहार नामनां ऋषभदेव अने

નેમિનાથનાં જિનાલયો બનાવ્યાં. આ જિનાલયો એક સ્થાપિદલબન્ધ પર સ્થિત હતાં. તેમનું નિર્ગમનદ્વાર એક જ હતું, જ્યારે બલાનકમણ્ડપ બે હતા. આઠ મણ્ડપ, બાવન જિનાલય અને આરસપહાણના ઉત્તાન પાટડાઓથી બનાવેલાં ઢ્ઝારોથી મણ્ડિત હતું. તેમાં પૂર્વજોના શ્રેય માટે શત્રુઝ્ઞય અને ગિરનારના પદૃ પણ બનાવ્યા હતા.

- ૩૧ તે જિનાલયના નિર્વાહ માટે બે દુકાન, ચાર પાડા તથા એક બગીચો ભેટ આપ્યો.
- ૩૨ આસરાજવિહારમાં પિત્તળનું સમવસરણ બનાવ્યું.
- ૩૩ મુનિઓને રહેવા માટે પાંચ વસતિ (ઉપાશ્રય) બનાવ્યા.
- ૩૪ શંખરાજા સાથેના સંગ્રામમાં મૃત્યુ પામેલા ભૂણપાલ વિગેરે ૧૦ રાજાઓ માટે મહીનદીના કાંઠે તે-તે નામવાળી શિવની ૧૦ દેવકુલિકા બનાવી.
- ૩૫ તથા તે મન્દિરની જગતીમાં પોતાની કુળ્ડેવી ચણિંડકા તથા દરિયાદેવની દેવકુલિકાઓ કરી.
- ૩૬ તેની આગળ ચાર સ્થુભ્રોને વિષે તોરણ બનાવ્યા.
- ૩૭ તપસ્વિઓને રહેવા માટે મઠ(આશ્રમ) બનાવ્યા અને તેના નિર્વાહ માટે ઘણી જૂદા જૂદા પ્રકારની આવકવ્યવસ્થા કરી.
- ૩૮ તથા ભીમેશ્વર નામના શિવમન્દિર પર સ્વર્ણના ધ્વજદણ્ડ-કળ્ણ સ્થાપિત કર્યા.
- ૩૯ તે જ મન્દિરના ગર્ભગૃહમાં પોતાની કુળ્ડેવી ચણિંડકાની મૂર્તિ તથા ગોખલામાં પોતાની અને તેજપાલની મૂર્તિ સ્થાપિત કરી.
- ૪૦ તે ગર્ભગૃહની પરિધિમાં દોલા બનાવી, તેની સામે વૃષભ (નંદી) બેસાડ્યો. નવો ચણ્ડીમણ્ડપ બનાવ્યો.
- ૪૧ પોતાની પલી લલિતાદેવીના શ્રેયને માટે વસ્તુપાલે વટસાવિત્રીનું મન્દિર બનાવ્યું.
- ૪૨ ભીમેશ્વર નામના શિવાલયની ફરતે આગલ પોઢવાળો (સપ્રતોલીક) વાડો બનાવ્યો.

- ४३ कुमासमण्डपिका पासे परब बनावी.
- ४४ ते (गाम)मां निम्बेयक नामना गणेशना मन्दिरनो, बकुलस्वामि सूर्यना मन्दिरनो तेमज कुमारेश्वर नामना शिवालयनो एम ३ मण्डप तेणे बनाव्या.
- ४५ गणपति, कपिल तथा महादेवना भुवननो जीर्णोद्धार कर्यो.
- ४६ त्यां महादेवना मन्दिर पासे मल्लदेवनी तेमज कुमारेश्वरना मन्दिर पासे पोतानी मूर्ति स्थापित करी.
- ४७ त्यां ब्राह्मणोना कुटुम्ब माटे ब्रह्मपुरी करावी.
- ४८ त्यां रहेनारा ब्राह्मणोने १३ वाडाओ [भेट] आप्या.
- ४९ तेमज रामपल्लिडिका गाम षट्कर्ममां निरत ब्राह्मणोने शासन (कारभार चलाववा?) माटे आप्युं.
- ५० मल्लदेवना पुत्र पूर्णिसिंहना पुण्यनी वृद्धि माटे पूर्णिसिंहेश्वर नामनुं शिवमन्दिर बनाव्युं.
- ५१ युद्धमां मृत्यु पामेला १४ सैनिकोनां नामथी पूर्णिसिंहेश्वर मन्दिरनी पासे बीजां १४ शिवालय बनाव्यां. तेना निर्वाहने माटे मठ सहित किल्लावाळी २ पलडिका (?) [भेट] आपी.
- ५३ त्यां परोपकारने माटे कुँड(कूवो) बनाव्यो.
- ५४ त्यां पोतानी ख्याति माटे तब्बव बनाव्युं.
- ५५ भट्टादित्य (सूर्य?)ना मस्तक पर मुगट, तेम ज तेना बगीचामां कूवो बनाव्यो.
- ५६ भट्टादित्यना अनेक प्रकारना उत्तानपट्ट (?) कराव्या.
- ५७ मूळथी बे माळ वाळुं तेमज अश्वशाळाथी युक्त मन्दिर बनाव्युं.
- ५८ त्यांना यशोराज नामना राजाना महेलनो जीर्णोद्धार कर्यो.
- ५९ पौत्र प्रतापसिंहना पुण्यने माटे एक परब बनावी अने तेनी आवक माटे घणी भूमि अने दुकानो भेटमां आप्या.
- ६०-६१ एकल्लवीर नामेना पादरदेवताना मन्दिरमां मत्तवारण अने तोरण सहित सोपानपंक्ति बनावी. त्यां पट्ट कराव्या अने द्वारसहित गभारे बनाव्यो.

### धोळकाधिकार —

- १-३ वस्तुपाले धोळकामां माता कुमारदेवीना श्रेयने माटे 'अम्बावसति' नामनुं आदिनाथ प्रभुनुं चैत्य बनाव्युं. बळी ते चैत्यनी फरते पोताना पूर्वज, बेनो, तथा स्वजनोना पुण्यने माटे फरता देवालयवाळां घणां चैत्यो कर्या. तेम ज तेनी आवक माटे अनेक दुकानो, घरो तथा पाडाओ [भेटमां] आप्या.
- ४ ते चैत्यनी बहार गायना अपहरण वखते थयेला युद्धमां वीरगति पामेला राणाओनां तेमज भट्टारकोनां देवकुलोनो जीर्णोद्धार कर्यो.
- ५ तेनी आगळ नवुं तोरण बनाव्युं अने माताना श्रेयने माटे [त्यां] वाव तथा शाळा बनावी.
- ६ संग्रामसिंह साथेना युद्धमां मृत्यु पामनार पोताना सैनिक वीरमना श्रेयने माटे वीरमेश्वर नामनुं शिवालय बनाव्युं.
- ७ पोतानी माताना श्रेयने माटे वाउडा गाममां नेमिनाथ प्रभुनुं चैत्य बनाव्युं.
- ८ तेजपाले धोळकामां पोताना बे पुत्र-पुत्रीना पुण्यने माटे बे वसति (उपाश्रय) बनावी.
- ९ धोळकाना पडी गयेला चैत्यनो जीर्णोद्धार कर्यो.
- १० 'भृगुकच्छचैत्य' नामना चैत्यनो जीर्णोद्धार कर्यो.
- ११ मल्लदेवनी पत्नी लीलूना पुण्यने माटे परब बनावी तेमज शिवालयनी पासे आघाट (कोट ?) बनाव्यो.
- १२ वस्तुपालना पुत्र यै(जै)त्रसिंहे अहिं वाव अने परब बनावी.
- १३ तेजपालना पुत्र लूणसिंहे अहिं ब्राह्मणो माटे कूवा अने परबथी युक्त ब्रह्मपुरी बनावी.
- १४ तेमज तामसिज गाममां परब, बगीचो तेमज अर्हद् वसति (चैत्यालय) बनावी.
- १५ वस्तुपाले राजा वीरध्वलना नामथी वीरपुरमां कूवो, तळाव, वाव, सत्रागार, परब अने बगीचो बनाव्या.

- १६ त्यां राजा वीरधवलना तेमज पिता आसराजना श्रेयने माटे 'लूणगेश्वर' नामनुं मन्दिर तथा माता कुमारदेवीना पुण्यने माटे 'मदनशंकर' नामनुं मन्दिर बनाव्युं.
- १७ तेमज त्यां राजा वीरधवलना श्रेयने माटे ब्रह्मपुरी तथा पिता आसराजना श्रेयने माटे वीर प्रभुनुं जिनालय बनाव्युं.
- १८ वाडाक प्रान्तना वल्लभीनाथना धाम गिरीन्दक गाममां मन्दिरनां तोरण बनाव्यां.
- १९ बोहक गाममां वीरप्रभुनुं जिनालय तथा परब बनाव्यां.
- २० गाणपत्ति गाममां गाणेश्वरमहादेवना मन्दिरनो मण्डप, तोरण, पोळ, कोट तथा परब बनाव्यां.

### धंधुकाधिकार —

- १ धंधुकामां वस्तुपाले अष्टापद चैत्यन्त्री भमतीमां २४ जिनबिम्बोनी स्थापना करी.
- २ त्यां माता-पिताना भवनने उत्तानपट्ट तथा पगथिया सहित आरसपहाणनुं कर्यु.
- ३ त्यां कोटेश्वर महादेवना मन्दिरमां तेणे तोरण तथा परिधि बनाव्या तेमज त्यां पोतानी आरसनी मूर्ति स्थापित करी.
- ४ तेजपाले राजा वीरधवलना श्रेयने माटे धंधुका अने हडालीय प्रान्तनी वच्चे परब सहितनुं सरोवर बनाव्युं.
- ५ वस्तुपाले गुंदी गाममां परब तथा वाव बनावी.
- ६ ते ज गाममां तेणे वीरप्रभुनुं बिम्ब पधराव्युं.

### प्रकीर्णकाधिकार —

- १ आशापल्लीना 'उदयनविहार'मां पोताना पुत्रना श्रेयने माटे वीर जिनेश्वर तथा शान्तिनाथ प्रभुना २ गोखला कर्या.
- २ शांतूवसति तेमज वायटीय (वायडीय) वसतिमां पोतानी माताना पुण्यने माटे मूळनायक प्रभुना बिम्बो स्थापित कर्या.
- ३ वडसर गाममां यशोधवल नामना गणपति(?)ना मन्दिरने बंधाव्युं

- ४ बाला(थारा)पद्मीयगच्छना चैत्यमां पल्ली अनुपमादेवीना श्रेयने माटे मूळनायकनुं बिष्णु पधराव्युं.
- ५ वस्तुपाले उमारसिज गाममां यात्रिकोने माटे परब अने विश्रामगृह बनाव्या.
- ६ सेरीसापार्श्वनाथ जिनालयमां मल्लदेव तथा पूर्णसिंहना पुण्यने माटे नेमिनाथ प्रभु तथा वीरजिनेश्वरना २ गोखला बनाव्या.
- ७ वीजापुरना वीरप्रभुना जिनालयमां मल्लदेवना पुण्यने माटे आदीश्वर भगवाननी देवकुलिका बनावी.
- ८ तारणगढ (तारंगा)ना 'कुमारविहार' नामना जिनालयमां आदिनाथ तथा नेमिनाथ प्रभुना २ गोखला कर्या.
- ९ नगर (नगरा) गामना जिनालयनो वस्तुपाले जीर्णोद्धार कर्यो.
- १० आ प्रशस्ति रचनार (बालचन्द्र) कविना गाम मण्डलमां वसति (उपाश्रय) करावी तथा 'मोढवसति'मां मूळनायक परमात्माने स्थापित कर्या.
- ११ पोतानी जन्मभूमिरूप साध्वालयमां जिनेश्वर प्रभुनुं जिनालय तथा शिवालय बनेनो जीर्णोद्धार कर्यो.
- १२ डंगरूपमां रहेला कुमारविहारनो तेणे जीर्णोद्धार कर्यो.
- १३ (व्याप्ररोल)वाघरोल गाममां पूर्वजोना जिनालयने ध्वजाथी तेणे शोभाव्युं.
- १४ अणहिल्लपुरमां पंचासर जिनालयमां मूळनायक भगवानने स्थापित कर्या.
- १५ मुंजालस्वामीनो रथ बनाव्यो.
- १६ भीमपल्लीमां जिनेश्वर परमात्मानो रथ करावी आप्यो.
- १७ प्रह्लादनपुर (पालनपुर)ना 'प्रह्लादनविहार' नामना चैत्यनो मण्डप अने २ गोखला बनाव्या.
- १८ प्रह्लादनपुरी तथा चन्द्रावतीपुरीनी अन्दर २ वसति (उपाश्रय) करावी.
- १९ वसन्तकस्थान, अवन्ति अने नासिकना जिनालयमां अरिहन्त प्रभुने [स्थापवा] माटेना २-२ गोखला बनाव्या.

- २० सत्यपुरमां महावीरस्वामी भगवानना जिनालयमां आदिनाथ अने नेमिनाथ भगवाननी देवकुलिका करी.
- २१ केदार नामना स्थळे(?) राजा वीरध्वल, राणी जयतल्लदेवी, मल्लदेव, तेजपाल अने पोतानी मूर्ति मूकी.
- २२ पोताना बनावेला अनेक जिनालयोमां तेणे ध्वजदण्ड-कळशनी स्थापना करी अने प्रशस्तिओ बनावी.
- २४ ममाण पर्वतथी आदिनाथ भगवान, पुण्डरीकस्वामी तथा कपर्दीयंक्षनां [नवां] बिम्ब मंगावी भविष्यना [शत्रुञ्जयना] उद्धार माटे शत्रुञ्जयना शिखर पर गुप्त स्थानमां राख्यां.

### अर्बुदाधिकार —

- १ अर्बुदगिरि (आबु) पर अचलेश्वर महादेवना मण्डपने तेणे बनाव्यो.
- २ श्रीमाताना मन्दिरमां पूर्वे जे काँई जीर्ण हतुं तेनो जीर्णोद्धार कर्यो अने जे न्यून हतुं ते पूर्ण कर्यु.
- ४ विमल मन्त्रीना जिनालयमां मल्लदेवना श्रेयने माटे मल्लिनाथ प्रभुनो गोखलो कर्यो.
- ५ तेजपाले पुत्र लावण्यसिंहना पुण्यने माटे नेमिनाथप्रभुनुं जिनालय बनाव्यु.
- ६ अहिं तेणे प्रद्युम्न, शाम्ब, अम्बिका तथा अवलोकन नामना ४ शिखरो बनाव्यां.
- ७-८ अहीं [नेमिनाथ प्रभुना चैत्यमां] चण्डप, चण्डप्रसाद, सोम, अश्वराज, लूणिग, मल्लदेव, वस्तुपाल, तेजपाल, जैत्रसिंह तथा लावण्यसिंह - ए दश पुरुषोनी मूर्तिओ हाथिणी पर आरूढ थयेली बनावी.

\*

श्रीबालचन्द्रसूति-विचरचिता  
श्रीवर्टत्पालप्रशास्तिः

अपूर्वभवा(ण)तिजैनः, सपूर्वभणितिः श्रिये ।

अनङ्गहारी वो भूया-दङ्गहारी जिनेश्वरः ॥१॥

स्थितमिह बहिरन्तर्जाग्रिति ज्ञानदीपा-र्चिषि तम इव यस्य स्कन्धयोः कुन्तलाली ।

प्रविलसति मुदे वः सोऽस्तु देवः शिवश्री-रतिसदनसनाभिनाभिसूर्जिनेशः ॥२॥

त्रिभुवनवनलक्ष्मीशेखरः कल्पशाखी, स भवतु भवभाजां भूतये नेमिनाथः ।

हरिरपि हरिहेलां यस्य दोर्दण्डशाखा-मधिमधुपविनीलो लम्बमानस्तातान ॥३॥

कुवलयदलदामश्यामधामा स वामा-सुत इह महतीं वः सम्पदं सन्तनोतु ।

शिरसि लसति यस्य व्योमकालं विशालं, फणिपतिफणजालं रत्नक्षत्रमालम् ॥४॥

नालीकप्रतिबोधबन्धुरतरः सच्चक्रनिःशोकता-

लङ्घर्माणमहोदयः किमपरं दोषाभिघाते कृती ।

कुर्यान् मे दुरितान्धकारनिकरप्रध्वंसनायाऽगत-

स्तारामार्गमनर्गलद्युतिरिनः श्रीवीरनामा जिनः ॥५॥

नप्राखण्डलमौलिमण्डलगलन्मन्दारमालारजः:-

पुञ्जैः पिञ्जरिताङ्ग्रह्यः स्मरशरत्रातच्छदाकोविदाः ।

धर्मारामपयोमुच्चः सुचरितस्तोतस्वनीसिन्धवः,

साधूनामपरेऽपि तीर्थपतयः पुष्णान्तु लक्ष्मीममी ॥६॥

ते वः पान्तु भवाब्धितो गणभृतः श्रीपुण्डरीकादयो,

यैरादाय घनं घनैरिव पयस्तीर्थेशनीरेशितुः ।

प्रोद्धृद्धितडिदगुणैः प्रवचनं विस्तारिभिः सर्वतः,

पीते यत्र भवन्ति कौतुकमहो! मुक्तास्तदेते जनाः ॥७॥

जलदमिव नदन्तं बालचन्द्रभदन्तं, गजपतिमधिरूढः प्रौढपाशाङ्गशादि ।

दधदवतु जगन्ति ग्रामणीगुह्यकाना-मयमरिबलजृम्भापक्षमर्दी कपर्दी ॥८॥

विश्वभराभारधुरन्धरं नरं, विधातुमन्तर्वि .....

..... ॥९॥

राजप्रभवभुवनभ्रान्तयशसः,  
प्रतापप्रागल्भीगलित ..... महसः ।  
क्षितीशोऽभूत् ..... विलसदसिदण्ड.....  
..... ॥१०॥

दिग्दन्तावलकर्णतालपवनप्रेष्ठुत्प्रतापानल-  
प्लुष्टोषसपलभूपतिभुजाहुङ्कारकारस्करः ।  
..... जगतः श्रीमूलराजः सुर-  
स्त्रीभिः काममपास्य नाम यदसिध्यानं समाधीयते ॥११॥

क्षोणीमानणहिल्लपाटकमिति प्राकारमौलिसखलत्-  
ताराचक्रमुदारविक्रमनिधिर्भोजः पुरं यः पुरा ।  
यत्राऽभ्रंलिहहेमहर्यवलभीवैदूर्यपुञ्जप्रभा-  
पुञ्जे पौरभुजङ्गसङ्गमरस्वैराः स्त्रियः कुर्वते ॥१२॥

प्रतिच्छन्दः कुन्दस्तुहिनगिरिरुच्चैरुपकथा,  
समस्याऽवस्या(श्यायः स्फु(स्फ)टिकशिखरी च द्विवचनम् ।  
अखण्डं पाख[ण्ड] कुमुदवनखण्डं सुरसरित्-  
यः पौनःपुण्यं(न्यं?) विशदमहसां यस्य यशसाम् ॥१३॥

अधिमृधमसिदव्या राजसूयीकयाजी, निजमहसि हुताशे राजहव्यानि हुत्वा ।  
प्रहतरिपुभिरुर्वीविष्टकुन्तः सयूपं, रुधिरसलिलपूतं यश्चकाराऽश्वमेधम् ॥१४॥

पुण्याङ्गजन्मा मकरन्दवत् पुरा, शिलीमुखैर्यस्य शिलीमुखैरिव ।  
आस्वाद्य लक्षः समरे नरेश्वरः, कथावशेषां पदवीमलम्भि सः ॥१५॥

यः शात्रवक्षोणिभृतां प्रचण्ड-दोर्दण्डकण्डूं शमयाम्बभूव ।  
उच्छेदयामास च मण्डलानि, स राजवैद्यो वचसामपन्था(ः) ॥१६॥

प्रौढप्रतापसुरवेशमनि कीर्तिकेतु-मारोप्य कान्तनयदैवतगर्भिते यः ।  
शात्ता(ता)सिकृत्तरिपुमस्तकनालिकेरै-राशापतिभ्य उपहारमिवाऽततान ॥१७॥

तस्मिन्नुद्यामवीरब्रतजनितयशःशेषतामश्नुवाने,  
चण्डश्चामुण्डराजः समजनि नृपतिस्तस्तुतो दानशौण्डः ।  
प्रेष्ठुद्दिर्द्यद्यशोभिस्त्रिजगति कुमुदप्रोज्ज्वलैः शुभ्रितेऽस्मिन्,  
ग्रामत्यद्यापि लक्ष्मीरनुगृहमसकृत् कृष्णमन्वेषयन्ती ॥१८॥

यात्रायां यस्य चेलुः कटक-करटिनः केतुभिः सान्ध्यमेघ-  
 ल्वा(?) यादायादभार्भिर्भसि विलसनाद् वीजितादित्यबिम्बैः ।  
 व्यावलाद्वाजिराजिक्षतधरणिरजः पुञ्चधूमस्य क्रीला(डा)-  
 लीलैः संहारवहेद्विषदवनिभुजां दिगगजांस्तर्जयन्तः ॥१९॥  
 यत्कृपाणकवलीकृताहित-प्रेयसीजनकुचस्थलादलम् ।  
 साङ्गनैः पतितबाष्पबिन्दुभिः, पङ्क्लिलादिव जगाम मन्मथः ॥२०॥  
 तन्नेत्रपात्रीप्रतिबद्धनासिका-प्रणालिकापातिभिरश्रुबिन्दुभिः ।  
 माहेश्वरो यः प्रतिपन्थियोषितां, ददौ गलन्तीः स्तनलिङ्गमूर्ढसु ॥२१॥  
 यद्वाणदत्तविधवाव्रतधारिणीभि-रद्वीन्द्रसान्द्रतरकुञ्जविहारिणीभिः ।  
 प्रत्यर्थपार्थिववधूभिरुरोजलिङ्गे, हा-हेति मन्त्रजपनं क्रियते श्रुबाष्पैः ॥२२॥  
 असिनभसि विलासं प्राप्य यस्य प्रताप-द्युमणिरखिलवैरप्रेयसीदिग्वधूनाम् ।  
 अहरत सह भूषारत्ताराचमूर्भि-श्वहरतिमिरपूरानाकुलानां विलासैः ॥२३॥  
 तत्पुत्रः समभूद् विभूतिसदनं कुन्तापनीतावनी-  
 शत्यो वल्लभराज इत्यभिधया भूमण्डलाखण्डलः ।  
 यात्रो(त्रा)नेहसि रहसा खुरपुट्टैरालक्ष्य पृष्ठं भुवः,  
 शेषे भारमपाचकार हृदये वाऽमुष्य वाहावली ॥२४॥  
 शरदि यस्य तुरङ्गख्वरक्षरत्-क्षितिरजः पटलच्छलधूमरी ।  
 विजयवल्लियशः कुसुमक्षिर्तिं, व्यतनुताऽतनुतापनुषां द्विषाम् ॥२५॥  
 अमितिसमितिसर्पद्वैरिमत्तेभकुम्भ-स्थलदलनविलग्नः स्थूलमुक्ताफलौघः ।  
 प्रचुरपयसि फुल्लत्पुष्करच्छन्नमध्ये, यदसिसरसि हंसश्रेणिशोभामवाप ॥२६॥  
 वैकुण्ठत्रिदशालयस्य सरणिः केतुर्द्विषां सङ्गर-  
 श्रीसीमन्तपथः प्रतापहुतभुग्धूमः क्रुधां कन्दलः ।  
 कुल्या कीर्तिलतावनस्य कबरी निःसीमराज्यश्रियः,  
 शौर्यश्रीकरिणीकरः करतले यस्याऽसियष्टिर्भौ ॥२७॥  
 विक्षुब्धदुग्धनिधिगर्भतरङ्गरङ्ग[द]-डिण्डीरपिण्डपरिपाण्डुयशाः शशास ।  
 भ्राता भुवं तदनु दुर्लभराजनामा, रामाविलोचनमधुव्रतपद्मखण्डः ॥२८॥  
 येनाऽखानि सरः सरोजसुभगं गम्भीरनीरश्रिया,  
 ग्राजिष्णुद्वुमसान्द्रसेतुवलिभिर्द्विराज्यमधोनिधेः ।

पुष्णाति प्रतिबिम्बितासितरुचिर्यत्राऽनिशं सङ्गतः,

स्वःसिन्धोरणहिल्लपाटकपुरप्राकारभित्तिर्भमम् ॥२९॥

यत्राऽभिषेणनभवः पथिमानमेत्य, पूर्वं सपलनरनाथपुरेषु रेणुः ।

तत्रत्यवामनयनानयनाम्बुवर्षे, राजानुकम्पपदवीमुदवाप पश्चात् ॥३०॥

यं वैरिनारीमनसि प्रियाणां, द्वितीयमालोक्य रतेरभीष्टः ।

स्थिर्ति दधौ नाऽत्मनि शङ्कमानो, द्वाभ्यां तृतीयोऽयमितीव मौख्यम् ॥३१॥

अध्याजि निर्भरनिघातविदारितेन(भ)-कुम्भोत्थलग्नघनमौक्तिकतारकौघः ।

प्राप्तद्विषन्मुखशशी रुधिरारुणाङ्गः, सायन्तनां वररुचि यदसिर्वभार ॥३२॥

तस्माद् विस्मारितरिपुवधूलोकविध्योकर(बिब्बोक)रीति-

जेऽनीतिव्यसनितमतिर्भूपतिर्भीमनामा ।

कीर्तिर्यस्य स्फुरति परितः स्वर्धुनीस्पद्धिनीयं,

यस्यामिन्दुर्भदयति मनो मेघफेनोपमेयः ॥३३॥

चमूचरणचूर्णितक्षितिरजोभिरग्रेसरै-निवेदितयदागमः सपदि भोजभूमीपतिः ।

विशन् निजपुरीं पुराऽनुपदमेव यस्याऽगतैः, प्रहृत्य धनुषा भटैः पतिरमोचि भूमीपतेः  
॥३४॥

कशाधातत्रस्यततुरगखुरखातक्षितिलो-

ल्लसदधूलीजालैरलमविरलैः संरुधिरे ।

यदुद्योगे शत्रुव्रजविधिनिधानोत्सुकचमू-

चरेन्निद्रकोधानलबहुलधूमैरिव दिशः ॥३५॥

निर्धूमः सूर्यवहिर्भुजभुजगपतेरुल्लसन्ती रसज्ञा,

सम्पा कोपाम्बुदस्याऽलिकतिलकलिपिः कौड़ुमी कीर्तिवध्वाः ।

सूराणामस्तसन्ध्या विजयजलनिधेविद्वमाङ्गूरपूरः,

सर्वे यस्य खड्गः प्रतिनृपतिचमूशोणितस्नानशोणः ॥३६॥

अहितनृपतिलक्ष्मीलुण्ठनाद्यंभविष्णु-र्जितरतिपतिरूपः कर्णभूपस्ततोऽभूत् ।

समरसरसि धीराद् विक्रमा(मो)तानवीराः, कति कति न हि यस्मात् त्रासमासेदिवांसः ?

॥३७॥

कैलासः कुटजानि कास(श)कुसुमं कृष्णांहिकल्लोलिनी-

कलोलाः कुमुदानि कुन्दकलिका कम्बु[ः] करिग्रामणीः ।

कर्पूरः करकावली कुमुदिनीकान्तत्विषः केतकी,  
 कामारिः करदानि यस्य यशसामेतानि विश्वोदरे ॥३८॥  
 पीताम्भोधिभिराजिरेणुभिरिलालग्नंभविष्णुर्जनः,  
 शीर्षेऽसौ पलितंभविष्णुरविलादभ्यंभविष्णुर्दृशोः ।  
 भूतेशः सुभगंभविष्णुरजनि स्थूलंभविष्णुः स्थली,  
 यस्याऽश्रीयखरोद्धतैर्घटकृतामाद्यंभविष्णुर्जनाः ॥३९॥

असमय इति यस्य द्वारपालैर्निषिद्धाः, प्रतिफलनमिषेण स्फटिकप्राङ्गणेषु ।  
 ददृशुररिनरेन्द्राः स्वं निषिद्धाणा रसान्त-र्गतमतनुह्रियेवाऽन्योन्यमानप्रवक्ताः ॥४०॥  
 व्याघातत्रणितकलाविकेन दोष्णा, क्षोणीं स क्षितरिपुसन्ततिः शशास ।  
 यदरूपं चकितमृगीदृशाः पुरन्ध्राः, पश्यन्त्यो दशशतनेत्रतामकाइक्षन् ॥४१॥

तस्मिन् शौर्यकथावशेषपदवीमुद्भाहमाने ततः,  
 सिद्धश्रीजयस्मिंहदेवनृपतिर्नेत्रप्रियंभावुकः ।  
 सप्ताम्भोधितटीपटीरपटलच्छायानिषिद्धाणोरगी-  
 गीतस्फीतयशाः शशास वसुधामेकातपत्रामिमाम् ॥४२॥

अहो! सपादलक्षेऽपि, स्वीकृते किल मालवम् ।  
 यो जग्राह तथाऽप्येष, त्यागीति भूवि कथ्यते ॥४३॥

विभोरस्य क्षात्रे महसि सहसा सर्पति नम-च्छिदालङ्कर्मणे किमय-कोपादिव दिवि ।  
 तिरोधादादित्यं तरलतुरगश्रेणिरवनी-रजोर्भिर्दिग्जैत्रे हरिहरति यस्मिंश्च हरति ॥४४॥  
 अभिषिषेण्यिषोः किल मालवं, शरदि यस्य वनेषु विनोदिभिः ।  
 कटदिति द्विरदैर्मदशालिभिः, शकलिताऽः कलितालमहीरुहः ॥४५॥

सेना सा सहसा तस्य, घना सररसा ततः ।  
 ततसाररसाभत्र(त्रृ), जातसासहस्राभया ॥४६॥ मुरुजबन्धः ॥

रतामरामतार, तारहाससहारता ।

महासिका कासिहाम, रासकाननकासरा ॥४७॥

धरापुरीपरिसरेषु युगान्तमुक्त-मर्यादवारिलहरिप्रकरप्रकाशम् ।

यस्याऽश्वस्यै(सै)न्यमतिमात्रमलोकि लोकै, फलाविलोलतरचामरफेनकूटम् ॥४८॥  
 प्रचलचलसमुद्रे यस्य भूभृन्निवासे, प्रसृमरतरवारिग्राहिणि स्म ब्रुडन्ती ।

विदलति बत धारा नो(नौ)रिवाऽन्तर्विसर्पत(द), बहुल[ल]हरिमन्दक्रन्ददस्तोकलोकाः  
 ॥४९॥

नामार्थमपनीयाऽस्य, यशोवर्माणमक्षिपत् ।

धाराध्वमयं कारा-पञ्चे गूजरीश्वरः ॥५०॥

जायन्ते कति नाम न क्षितिभुजः क्षोणौ ? गुणजः पुनः,

श्रीमान् सिद्धनरेन्द्र एव विदुषां दारिद्र्यविद्रावणः ।

चन्द्राद्यागमने ग्रहाः समुदयन्त्येते जगद्वाधक-

ध्वान्तध्वंसकरः परन्तु भगवान्मध्योजिनीवल्लभः ॥५१॥

यस्य तुष्टस्य रुष्टस्य, विदुषां विद्विषामपि ।

धर्मकर्मणि निष्णस्य, दानकेलिकरः करः ॥५२॥

सकलमेकलमेदुरगोकुलो-रसमये समये शरदोसुना ।

युधि गताधिगता रिपवः शरैः, स(श)कलिताः कलिता गजवाजिभिः ॥५३॥

वर्णन्ते गणशो गुणाः कथममी कुन्देन्दुशङ्खत्विष-

स्तस्य श्रीजयसिंहदेवनृपतेरेकैव जिह्वा यतः ।

आदौ यस्य कृपाणकृतशिरसां प्रत्यर्थिपृथ्वीभृतां,

सद्यः स्वर्भजतामहंप्रथमिकापाणिन्धमोऽध्वाऽभवत् ॥५४॥

तस्मिन् भूमिभृति त्रिविष्टपतेरद्वासन(ना)ध्यासिनि,

क्षमामाधत्त कुमारपालनृपतिवैकुण्ठवैतपिण्डकः ।

अर्णोराजममन्दरागकलनानिःशेषमुन्मथ्य यो,

लक्ष्मीमाप घनागमादृतवलिप्राणे रणोपक्रमे ॥५५॥

उत्कृष्टभूपगणनासु विधाय रेखां, यस्याऽऽदितिः सुरसरिन्मिषतो विरञ्जिः ।

ततुल्यमन्यमवनवेक्ष्य पाणे-श्वन्दं खटीमिव मुमोच नभःकटत्रे ॥५६॥

दृष्टस्तेन शितांशुपेशलगुणश्रेणिनृपः श्रेणिको,

दृष्टस्तेन दशार्णभद्रनृपतिः स्पद्धर्जितस्वःपतिः ।

दृष्टस्तेन किलाऽर्धभारतपतिः श्रीसम्प्रतिः साम्प्रतं,

दृष्टे येन कुमारभूपतिरियं धर्माभिरामाकृतिः ॥५७॥

दूरादेव तवाऽनताः क्षितिभृतः पुरुषिणः पौरुषा-

धारः सैष दृष्टन्मयानपि चिरं चौलुक्यचूडामणिः ।

उत्खातप्रतिरोपिता न.... भूपीठे मठः श्रेयसा,

स्थान-स्थाननिवेशितामितजिनप्रासादमालामिषात् ॥५८॥

यः कारितानेकजिनेन्दुमन्दिर-ध्वजाभुजानिर्गलहस्ति... ।

हिंसापिशाची(चीं) पटहप्रघोषणा-भिचारमन्त्रैर्निरवासयद् भुवः ॥५९॥

वीक्ष्य वक्षसि सानन्दा-म(मि)न्दिरां कृतमन्दिराम् ।

स्पर्ष्येव मुखाम्बोजं, भेजे यस्य सरस्वती ॥६०॥

स्वीकृत्याऽश्रमजश्रमध्वगतते धत्तेऽम्बु भट्टारिका,

काऽपि श्रीहरिसिद्धिरित्यनितवा(भिनवा) तावज्जनानां श्रुतिः ।  
नव्यानव्यतरस्तु कुङ्गणपतेरादाय मौलिं बली,

यत्पत्तिः प्रभुरम्बडः फिल ददौ वैकुण्ठसौख्यामृतम् ॥६१॥  
लीलाबन्धुरगन्धसिन्धुरघटादानोर्मिभिः पङ्क्ले,

यस्य द्वारि तिनि)पेतुषः सरभसं सेवार्थिनः पार्थिवान् ।  
आलोकन्त सहासहाकृतिकृतः पौरा गरीयःपरा-

भूतिम्लानमुखत्विषः परिलसलज्जानमत्कन्धरान् ॥६२॥  
एकातपत्रां भुवमत्र शासति, छत्राणि काले जलदस्य केवलम् ।

कुलालगेहे बहु पार्थिवस्थिति-र्नदीषु रोधः कलिरदिभूमिषु ॥६३॥

अमरनगरनारीनेत्रनिःपीयमाने, क्षितिभुजि भुजभीमः तत्र निःसीमकीर्तिः ।

नृपतिरजयदेष्वः सेवते स्मर्क्षमाया-स्तलमतुलबलश्रीः शत्रुसन्तानकेतु ॥६४॥

प्रसृमरमदकुल्यातीरवैखानसालि-द्विजकुलकृतपुञ्जावेदमन्त्रानुवादैः ।

युवतिकुचिक्षिशोरद्वद्वायादकुम्भैः, करिभिरकृत यस्य प्राभृतं जाङ्गलेन्द्रः ॥६५॥

गच्छामः स्वपुरं पुरन्दरपुरद्वैराज्यमत्र स्थितै-

र्मातः! किं गहने वनेऽथ जनकः कोऽस्माकमित्यात्मजैः ।

उक्ताः पूर्वसुखं नवीनमसुखं स्मृत्वाऽस्य वैरित्वियः(य)-

स्ना(स्ता)नेव स्नपयाम्बभूवरमितैः क्रोडस्थितानश्रुभिः ॥६६॥

अजनि विजयमूलं मूलराजस्तदीयः, क्षितिपतिरतिवीरः सूनुरन्यूनतेजाः ।

अधिकलिततरङ्गान् वैरिणो वाहिनीशान्, यदसिकलसयोनिः पीतवान् लीलयैव ॥६७॥

किं ब्रूमो वयमस्य चारुचरितं चौलुक्यचूडामणेः,

..... पार्थिवघटाकुट्टाकदोःसम्पदः ।

मूर्च्छः कुण्ठितकर्मकर्मठतया.....,

यः संहर्तुमना मनागपि रणे बालोऽपि नाऽलोकितः ॥६८॥

तत्पद्वोदयशैले, राजमहसि हतौ सहः शूरः (?) ।  
उदयायि भीमदेवः, तमःप्रणासी(शी) महातेजाः ॥६९॥

एतस्मिन्नवनीश्वरे शिशुतया त्रातुः किलाऽनीश्वरे,  
भूमीगोलमलोलसाहसनिधिस्तद्वश्य एवाऽभवत् ।

अर्णोराज इति प्रतापवसतिः सामन्तवास्तोष्पतिः,  
प्रत्यर्थिप्रतिहृतगुर्जरपतिः श्रीजालजालन्धरः ॥७०॥

सारावं मारयामास, रणसिंहनृपं रणे ।

यः पुरा गूर्जरधरा-निर्जराधिपवैरिणम् ॥७१॥

वैकुण्ठनाकाध्वनि यस्य रेजुः, कृपाणपद्वे पृथुपुष्कराणि ।

हताहितक्षोणिभृतां प्रयाता-महो पदानीव करम्बितानि ॥७२॥

कुन्देन्दुसुन्दरमहांसि यशांसि यस्य, विश्वत्रयों धवलयन्ति किमत्र चित्रम् ? ।  
विद्वेषिणां मलिनयन्ति यशःप्रशस्ति-मेतत् पुनर्मनुसि कस्य न कौतुकाय ? ॥७३॥

तदङ्गजः सङ्ग्रहसङ्ग्रहः, कृतारिभङ्गः स्मरचङ्गदैहः ।

अजायत श्रीगिरिशप्रसाद-प्रसादलीलो लवणप्रसादः ॥७४॥

लाटः पाटवमुत्सर्ज समभूद् बङ्गोऽपि रङ्गोजि(ज्ञितः),

पाण्डच्यः पिण्डमपाकरोद् गिरिगुहाकोणेऽविशत् कौङ्कणः ।

केलिं केलिरनायकोऽपि मुमुचे कान्तीरवन्तीपतिः,

श्रुत्वा यस्य जगन्नमस्यमहसः प्रस्थानभेरीरवम् ॥७५॥

यद्वाजिराजिगमनोद्घृतधूलिसम्प-दाद्यम्भविष्णुषु तटेषु दिवस्तटिन्याः ।

क्रीडन्ति देवशिशुभिः सह पांशुमुष्टि-निक्षेपगूढमणिभिः सुरलोककन्याः ॥७६॥

यमभिवीक्ष्य यमाकृतिमुद्दट-स्फुरणतो रणतो रिपुराजकम् ।

द्रुतमनेशदुपद्रुतमुज्ज(ज्ञ)ता-नुपमकुन्तमकुन्तलबन्धनम् ॥७७॥

कस्तूरी-घनसार-कर्बुरसुरः श्रीखण्डलिप्तं वपु-

धर्मिल्ले नवमल्लिका मृगदृशः कण्ठे परीरम्भणम् ।

वक्त्रे नागरखण्डमित्यपि गते सङ्कल्पयोर्निं मनः,

सूते नैव तथाऽपि यद्वयभरत्रस्यत्त्विषां विद्विषाम् ॥७८॥

आकर्ण्य प्रावृषेण्याम्बुदनिवहमहागर्जितं गूजरिन्दो-

र्यस्याऽवस्कन्दताम्रानकनिकररवभ्रान्तितो भीतिमन्तः ।

नशयन्तस्त्यक्ततल्पाः करधृतवसनं मुक्तकेशाः क्षितीशाः,  
सन्धार्यन्तेऽवरोधैः कथमपि कथितप्रस्तुतार्थैर्निशीथे ॥७९॥

जलधरपयः पूरैः खातक्षितिप्रकटानरि-क्षितिपनगरे प्राप्यानल्प्यान् निधीनधिमन्द्रम् ।  
अतिगुरुगिरा गायद्विर्यत्पराक्रममुज्ज्वलं, कटिकृतकुथकु(ल्कु)न्धैः पाथैः सहर्षमनृत्यत  
॥८०॥

सुतस्तस्मादासीदिह जगति दासीकृतरिपुः,  
क्षितीसः(शः) स न्यायी प्रकृतिधवली(लो) वीरधवलः ।

अहो पञ्चग्रामप्रधम(न)मिषधारागृहगतः,  
प्रतापी यस्याऽसिर्भटरुधिरधाराभिरभवत् ॥८१॥

शत्रूणां कालरात्रिमृ(मृ)गमदतिलकं प्राज्यसाम्राज्यलक्ष्म्याः,

शाखा रोषद्वमस्य प्रचलतरमहःखडिग्नः शृङ्गयष्टिः ।

स्फूर्जच्छौर्यप्रदीपाञ्जनमनणुयशःपुण्डरीकस्य नालं,  
पाथोधिः पुष्कराणामसिरसितरुचिर्यस्य हस्ते विभाति ॥८२॥

भास्वत्कान्तिकुलङ्गिलेन रजसा वाजिव्रजक्षोदित-  
क्षमापीठप्रभवेण नैशतमसामद्वैतमातन्वत ।

लोकेऽस्मैश्विरकाङ्गिक्षताप्रिवधूसभोगसंसिद्धिवान्

यस्मै हन्त परंत्याऽयमुदितः कामी जनः श्लाघ्यते ॥८३॥

युधि यत्र घनश्रीके, शरासाराभिर्वर्षणि ।

प्रत्याधिवाहिनीहंसै-रुद्गीयोद्गीय निर्गतम् ॥८४॥

वनकरिकाधातैरस्तङ्गतद्र(द्व)मभर्तृका, निभृतमसकृत् क्षोणीपीठे लुठत्तनुयष्टयः ।  
यदरिनगरीलीलोद्याने गलत्कुसुमाश्रुभि-भ्रमरकवि[भिरु]त्क्षप्तोच्चै रुदन्ति लताङ्गनाः  
॥८५॥

दतेङ्गकम्पितिमिवीव(?) मुखारविन्द-ग्लानि तनोति परिमन्दयति प्रतापम् ।  
यत्कीर्तिरत्र हिमराजिरिव स्फुरन्ती, द्वेष्टि द्विषां विजयवल्लियशःप्रसूनम् ॥८६॥

उद्धूतानां मरुदभिः पथि पथि रजसा(सां) दर्शनाद् भीतभीतः,

कम्पादुद्भ्रान्तदृष्टिर्द्विषदवनिभुजामात्तदिक्कः समूहः ।

यस्याऽवस्कन्धमेव स्फुरितमनुपदं शङ्कमानो दिगन्ता-

नारुह्या॒रुह्यापल्लीशिखरिषु सहसा॑स्तोकमालोकते स्म ॥८७॥

यस्य तेजोनलं काष्ठा-न्तर्गतं रिपुयोषिताम् ।

परित(ः) पोषयामासु-रिव निश्चासमारूतैः ॥८८॥

यदरिगणः कविवाणी-श्रवणपरः सम्पदीव विधुरेऽपि ।

गैरिककटकविटङ्गाः, कृशोदरीभूषितो भजति ॥८९॥

पृथ्वीचौर! निवारकोऽसि जलधेश्वन्दः श्रितस्त्वत्पदो-

र्निद्रालुः सकलभ्रमेषु जगतः संकृद्यपायो(?) बली

सद्वाक्यामृतचञ्जनीः सजवनज्योतिः प्रगेयं दिशः,

शक्षद् व्यापृतवानिहाऽप सहसादोजस्वलीलं यशः ॥९०॥

॥ इदं काव्यं कविनामगर्भं चक्रं दुष्करम् ॥

शेषदण्डजुषः क्षोणी-च्छत्रस्य कलशायते ।

अयं वलयिताम्भोधि-दुकूलस्योपरि स्थितः ॥९१॥

इतश्च - अखर्वः शाखाभिः फलतिलकिताभिः, कलयति;

स्फुट(टं) प्राग्वाटानां वटवटपलक्ष्मीमभिजनः ।

अपर्णोऽपि च्छायां क्षितिवलयकुक्षिम्भरिमयं,

वितन्वानः कामं प्रथयति न कस्याऽनुतरसम् ? ॥९२॥

तत्राऽजायत निस्तुषायतगुणश्रेणीभिरात्मम्भरि-

र्विश्वाधारपरः पुरा नवनवश्रीमण्डपश्चण्डपः ।

यत्कीर्त्या धवलीकृतेऽवनितले कल्लोलकोलाहलै-

र्जानीते यदि कंसवः शिशयिषुर्दुर्घाम्बुर्धि प्रावृषि ॥९३॥

समभूदयं गजपतिर्जगति, प्रथमः सतां समतया मतया ।

च्छलमाप्तवान् कलितः ---, प्रतिवासरं परमया रमया(?) ॥९४॥

वल्गाद् विवेककलहंससरोजखण्ड-श्वण्डाशमचारुगुणरत्नमहाकरणः ।

चण्डप्रसाद इति धर्मधनैरखण्ड-स्तस्मादजायत सदायतबाहुदण्डः ॥९५॥

दिग्दन्तावलकर्णतालमितिभिर्यत्कीर्तिरङ्गाङ्गना,

नृत्यन्ती श्रमवा(मा)गतेव जगतीविस्तीर्णरङ्गाङ्गणे ।

म्लानं म्लान्यमिवाऽक्ष(क्षि)पन् मृगधरं धमिल्लकोशादमू-

न्यादाय स्वनखैर्लाटतटतः खेदोदबिन्दूनिव ॥९६॥

क्षोणीमण्डलकुण्डलः समभवत् तस्याऽङ्गजः स्वर्गज-  
 प्रालेयाचल-कास-कुन्दकलिकासंकाशकीर्तिः कृती ।  
 सोमः कोमलकौमुदीपतिकलासब्रह्मणीभिर्गुण-  
 श्रेणीभिः कलितः सदैव ललितश्रीकेलिकेलीगृहम् ॥१७॥  
 पर्यणैषीदसौ सीता-मविश्वामित्रसङ्गतः ।  
 असूत्रितमहाधर्म-लाघवो राघवोऽपरः ॥१८॥  
 जननीतिविदात्मीयं, जननीपदपङ्गजम् ।  
 प्रत्यं विजयावासः, पूजयामास यः सुधीः ॥१९॥  
 फुल्लत्कैरवभैरवप्रहसितक्षेतं यदीयं यशः,  
 श्रुत्वा संसदि गीयमानमनिशं हाहादिभिर्गायनैः ।  
 धारावाहिभिरश्रुभिः प्रमुदितस्तदयन्त्रधारागृह-  
 क्रीडाकौतुकमातनोति सुचिरं शच्याः सहस्रेक्षणः ॥१००॥  
 सुतारकीर्तिः सुकुमारकीर्तिः, कुमारदेवीमिति धर्मसेवी ।  
 किलोपयेमे हृतहेमगौरीं, पूरीकृताशेषजनोपकारः ॥१०१॥  
 तस्याः कुक्षिसरोहंसाः, पक्षद्वयसमुज्ज्वलाः ।  
 त्रयोऽस्य सूनवोऽभूवन्, सदाचरणरागिणः ॥१०२॥  
 ज्येष्ठो तेषां जातवान् मल्लदेवः, श्रेष्ठः कीर्त्या वस्तुपालो द्वितीयः ।  
 तार्तीयीकस्तारिविस्तारितेजाः, तेजःपालः पालितस्वप्रतिज्ञः ॥१०३॥  
 तेजःपाल इति प्रसिद्धमहिमा वर्णयो हिमानीशुचिः(चि)-  
 स्वान्तः कान्तगुणैकभूः स विदुषां केषां विशेषान्तहि ? ।  
 यं सर्वेश्वरमीश्वरप्रतिनिधिः प्राज्ये स्वराज्येऽप्यधान-  
 निर्बन्धादुपरुद्ध्य वीरधवलः क्षमाचक्रसङ्कन्दनः ॥१०४॥  
 स्फुटितकुटजगौरा यस्य दूरादपि स्वः-सरितमिव विजेतुं गीयमाना दिशाभिः ।  
 स्फुरति वियति कीर्तिः कारितानेकचैत्य-ध्वजपटकपटेनाऽसूत्र्य मूर्तीरनन्ताः ॥१०५॥  
 यस्य विस्फुरितं पाणि-पल्लवेन तथा तथा ।  
 यथाऽर्थिभिर्वृथा कल्प्य-दुमसृष्टिरमन्यत ॥१०६॥

उल्लासयामास गुणैः स्वकीयै-ज्योत्स्नावदातैः कुमुदं सदा यः ।  
प्राग्वाटवंशार्णवपार्वणेन्दुः, स वर्ण्यते सम्प्रति वस्तुपालः ॥१०७॥

यदधीनमधाद् वीर-धवलो धवलैगु(र्ग)णैः ।  
स्तम्भतीर्थपुरं क्षेम-हेतवे योगसङ्गतः ॥१०८॥

सिन्धुराजतनयो नयोज्ज्वल(:), स्तम्भतीर्थनिधनार्थमागतः ।  
शङ्खभूपतिरमात्यभूभुजा, येन सङ्घरभुवि प्रवासितः ॥१०९॥

न किं जाल्मोऽमुना योद्धु-माययौ सिन्धुराजभूः ।  
शङ्खः स यः पुरः कीर्त्या, योषिताऽप्यस्य निर्जितः ॥११०॥

विश्वस्याऽपि समक्षमेव विदधे सा नर्मदा नर्मदा-  
तीरे वीरवरेण येन जयिना सेना यदूनां पुरा ।

तेनाऽपि प्रसभं महीतटमहीमागत्य मृत्योर्महे

सेहे भ्रूकुटिभङ्गभीषणमुखः सङ्घच्छै न सं(शं)खेन यः ॥१११॥  
पूत्कृत्य शङ्खं हरशङ्खगौर-गुणेन येनाऽजिमहे महीयान् ।

असूत्रि मन्त्रिप्रवरेण कोऽपि, शब्दः स यो नाऽब्दशतैर्विनाशी ॥११२॥  
दिग्दन्तावलगल्लपल्लवलगलदानाम्बुधिः पङ्क्ले,

क्रीडित्वा किल यस्य कुन्दधवला कीर्तिर्दिशां मण्डले ।  
यदत्त्वोरसि फालया(म)म्बरभुवः स्वर्द्धमधामाऽगमद्

धत्ते तत्पदमेकमङ्गमिष्ठः पङ्काकुलं चन्द्रमाः ॥११३॥

भजत भजत धर्म्य कर्म दुष्कर्मधर्म-क्षपणनिपुणगङ्गावारिसब्रह्मचारि ।  
कुगतियुवतिलास्यस्थानमालस्यमस्मि-नपि च कुरुत मा मा वर्तते यावदायुः ॥११४॥  
अयि यदिदमजस्तं विस्सासाकम्पमान-द्वुहिणकरचतुष्काध्यापकाधीतरीतिः ।  
जवनपवनवेल्लद्वैजयन्तीपटानां, विरचयति चलत्वे वादपत्रावलम्ब[म्] ॥११५॥

॥ युग्मम् ॥

इति निपीय गुरोर्गुरुदेशना-वचनवारि निवारितकल्मषम् ।

अयमसूत्रयदात्महितक्रिया-ममितिधर्मविनिर्मितिभिः कृती ॥११६॥

श्रीशत्रुञ्जय-रैवतादिषु महातीर्थेषु धर्मार्थिना,

येनाऽकारि चतुर्दिग्न्तमिलितामादाय सङ्घावलीम् ।

मोहरेरभिषेणनप्रतिकृतिर्यात्रा पवित्रात्मना,

के के तद्वणवर्णनासु कवयः सान्द्रासु तन्द्रालवः ? ॥११७॥

अपरहिमगिरिप्रभं पताका-मिषमखभोजनवाहिनीकमुच्चैः ।  
 सुरसदनमकारि नाभिसूते-र्धवलकृते सुकृतेङ्गितेन येन ॥११८॥  
 किञ्च स्थम्भनके निकेतनमयं वामेयभर्तुर्नवी-  
 चक्रे शक्रपुरं प्रसृत्वरयशोगीतः परीतः श्रिया ।  
 यस्योदंशुमुदीक्ष्य हेमकलशं प्रत्यंशुमालिप्रम-  
 क्रोधेनेव पतिस्त्वषामुदयते प्रधातताम्नारुणः ॥११९॥  
 उद्घ्रेयः सुधाबन्धु-वाचा पञ्चासराभिधम् ।  
 सुरसद्वशिखापुष्कु(ष्प)-मणहिल्लपुरश्रियः ॥१२०॥  
 स्थम्भनकपुरं परितः, प्राकारं किञ्च कारयामास ।  
 यः कलिवैरिविलोडित-धर्माभयदुर्गमिव सचिवः ॥१२१॥  
 पौषधशाला दुरितौ-धधशाला येन करिता बहुशः ।  
 आनन्द-कामदेव-प्रमुखाननुकुर्वता चरितैः ॥१२२॥  
 न्यायान्जिभुजोपातं, वित्तबीजमसौ सुधीः ।  
 शस्यार्थमर्थिकल्पद्वुः, सप्तक्षेत्र्यामवीवपत् ॥१२३॥  
 येनाऽखानि सुपुण्यखानिचरितेनाऽत्यन्तरम्यं सरो,  
 नीरोत्त(तु)ङ्गतरङ्गसुभगं ग्रामेऽर्कपालीयके ।  
 यत्राऽभोजवनीपकमहो मत्तालिनां पेटकं,  
 प्राहुं कल्पदु गायती(?) बत गिरा श्वेतं यदीयं यशः ॥१२४॥  
 किं बहु ब्रूमहेऽमुष्य, धर्मस्थानमितिस्तदा ।  
 क्रियते क्रियते व्योम्नि, नक्षत्राणां मितिर्यदा ॥१२५॥  
 ऐन्द्रो मण्डप एष चण्डपकुलश्वेतांशुना कारित-  
 स्तेनाऽनल्पगुणापणेन तरणेवीहारविष्कम्भकः ।  
 तत्तत्पूर्वजमूर्तिभिस्तिलकितः शैवेय-वामेययो-  
 शैत्यद्वन्द्वमिदं च सञ्चितयशःसन्दोहसन्देहकृत् ॥१२६॥  
 आगत्येन्द्रमतन्द्रचन्द्रमहसां धिक्कारिणी स्वैरिणी,  
 यावन्मण्डपमश्वराजतनयेनाऽग्राहि यल्लम्पटा ।  
 सा कीर्तिर्भुवनं समागतवती तद्वल्लभा सम्भ्रमा-  
 दित्येवं परिभावयन्निव जराजीर्णो विधिः कम्पते ॥१२७॥

गण्यः पुण्यवतामयं धुरि धराऽनेव रलप्रसूः,  
श्लाघ्योऽसौ महतामयं गुणमयः श्रीवस्तुपालः सुधीः ।

यः शत्रुञ्जयतीर्थपार्थिवशिरस्यासूत्रयामासिवा-  
नैन्द्रं मण्डपमुच्चमुत्तममनुं श्वेतातपत्रोपमम् ॥१२८॥

किञ्च्छैतस्य कुले गुरुर्गुरुतप्रज्ञापरिज्ञातगीः-

सर्वस्व(ः) स्मरदोःस्मयव्ययपटुः श्रीशान्तिसूरिः पुर(रा) ।  
आसीद् गौतमसत्तमक्रमनमद्वव्यावलीमूर्द्धसु,

च्छत्रीभूय यदीयपाणिरकरोत् पापातपापाकृतिम् ॥१२९॥

अजनि रजनिजानिद्योतिरुद्योतिशील-ब्रतविदलितमोहध्वान्तवल्लिप्ररोहः ।

तदनु जगदमारकोडविक्रोडदंष्ट्रो-गमरममरसूरिः सातयन् कीर्तिभूरिः ॥१३०॥  
तेनेन्द्रमण्डपे तेने, मतेनेह मनीषिणाम् ।

प्रतिष्ठाविधिरभ्योधि-गम्भीरिमगुणस्पृशा ॥१३१॥

अस्ति स्वस्तिश्रीविशालो विशालो, द्रङ्गः सम्पन्मण्डली मण्डलीति ।

तस्मिन्नासीत्(द) मोहमल्लप्रणाशी, प्रज्ञाभूरिः किञ्च देवेन्द्रसूरिः ॥१३२॥

समजनि नभःसिन्धुश्रोतस्सबन्धुयशःसुधा-

धवलितहरिद्वित्तिर्भद्रेश्वरो गणनायकः ।

तदनु सदनं सच्चारित्रश्रियः परमद्वृत-

स्थितिरपबलः स्तम्भारम्भान्वितो न कर्दापि यत् ॥१३३॥

अभवदभयदेव(ः) सूरिरुद्धामकीर्ति-

स्तदनु वदनलक्ष्मीनिर्जितेन्दुप्रशस्तिः ।

व्यथितुमिह मनांसि त्रासमासाद्य यस्माद्(त),

प्रगुणयति न बाणं पञ्चबाणो मुनीनाम् ॥१३४॥

साहित्याम्बुनिबुद्धि(निधिः) .... [सत्त]कलीलाविधि-

र्नानालक्षणसेवधिर्निरवधि ब्रू(ब्रू)मः किमन्यद् वयम् ? ।

पुंरुपेव सरस्वती त्रिजगतीसङ्गीतकीर्तिः कृती,

तत्पटे हरिभद्रसूरिरजनि श्रीमानतीव ब्रती ॥१३५॥

शिष्यस्तस्याऽभवद् बाल-चन्द्रसूरिरतन्दधीः ।

प्रत्यपद्यत यं स्वने, तनयं श्रुतदेवता ॥१३६॥

तेने तेनेयमसमा, समावर्जितकोविदा ।

श्रीमतो वस्तुपालस्य, प्रशस्तिः स्वस्तिशालिनः ॥१३७॥  
 सार्ढ्द तारागवीभिः निशि शशिवृष्टभे पश्चिमायां प्रयाति,  
 प्रातः प्रातश्चरित्वा तरलतमतमःपूरदूर्वाविणानि ।  
 भास्वानश्चानिव स्वान् हरिहरिति चिरं चारयत्येष यावत्,  
 तावननन्द्यादनिन्द्या मतिभण(णि)तिरसौ वस्तुपालप्रशस्तिः ॥१३८॥

॥ इति मन्त्रिमुकुटश्रीवस्तुपालप्रशस्तिः ॥ स्वस्तिकृद् भूयात्  
 श्रीश्रमणसङ्घस्य ॥

कृतिरियं श्रीबालचन्द्रकवेः ॥ लिखिता सिद्धान्तधर्मेण

सं. १५१८ व. [वर्षे] ॥

श्रीबालचन्द्रसूचिरचिता

श्रीवरदत्पालप्रशास्ति:

॥८०॥ श्रीरैवतावले श्रीवस्तुपालावतारितश्रीशत्रुञ्जयप्रासादे वामभागे प्रविशतां  
पट्टिकाषट्कप्रशस्तिकाव्यानि यथा—

लक्ष्मीताण्डवमण्डपे हृदि सदा विश्वोपकारिक्रितं,  
बिभ्राणः किल शैशवेऽपि कलयन् गोपीवरत्वं विभुः ।  
प्रत्युद्यु(द्य)तस्मितौ जिगाय नरकं योऽरिष्टनेमिर्जगद्  
विख्यातः स निरस्तदुर्द(धं)रतमा देवो मुदे वो जिनः ॥१॥  
पाथोनाथ इवाऽच्युतस्थितिवशो वंशोऽस्ति गम्भीरता—  
पात्रं प्राप्तसरस्वतीपरिचयः प्राग्वाट इत्याहवयात् ।  
दत्त्वा रत्नकदम्बकानि सुमनःप्रीतिं समातन्वती,  
येनाऽशोभि यशोभिरम्बरतलं द(डि)ण्डीरपिण्डैरिव ॥२॥  
तत्राऽजनिष्ठ चण्डप-इति गुणसङ्गीतमण्डपः श्रीमान् ।  
निजकुलदेवकुलं यो, जिनदैवतमावृणोति स्म ॥३॥  
निजकुलकीर्तिस्तम्भः, समभूच्यण्डप्रसाद इति तस्मात् ।  
समजनि यत्र जयश्रीः, सधर्मिणी शालभञ्जीव ॥४॥  
पुरुषोत्तमस्य तस्या-ऽजनिषातां सौर-सोमनामानौ ।  
पुत्रावनुकृतनेत्रा-वतिमात्रालोकनिष्ठातौ ॥५॥  
सोमस्य च रामस्य च, निच्छद्गुणस्य नाऽन्तरं विद्यः ।  
कुशलवपुषोऽङ्कपाली(ली), समवाप्यत सीतया यस्य ॥६॥  
विधेवेधा इवाऽमुष्य, त्रयोऽभूवंस्तनुभूवः ।  
केलीति नन्दिनी चैका, शारदेव विशारदा ॥७॥  
तेषु मुख्योऽश्वराजाख्यो, मध्यो विजयराभिधः ।  
लघुस्तिहुणपालाहव-स्त्रयीवेयं त्रयी बभौ ॥८॥  
ब्रूमः किमश्वराजस्य, पित्रोर्भक्तिकृतोऽधिकम् ।  
कथायां न धिनोत्येव, श्रवणद्वयम् ॥९॥

प्राग्वाटान्वयभूस्तथाऽजनि पुरा सामन्तनामा पुमां-  
 स्तद्भूः शान्तिरिति प्रशान्तचरितोऽस्माद् ब्रह्मनागः सुतः ।  
 तत्पुत्रोऽभवदामदत्त इति तद्भूर्ना(र्ना)गडोऽभूत् ततो,  
 दण्डेशः समभूत् प्रभूतधिषणासम्भूतिराभूरिति ॥१०॥  
 धनपाल-पूर्णपालौ, महिपालस्तस्य सूनवोऽभूवन् ।  
 लक्ष्मीकुक्षे: पुत्री, कुमारदेवीति च ख्याता ॥११॥  
 सोमसूनोर्बुधस्येव, बुद्धिर्विश्वैकपाविव(व)नि(नी) ।  
 आसराजस्य तस्याऽसा-वजायत सधर्मिणी ॥१२॥  
 कुमारदेव्यामेतस्य, चत्वारः सूनवोऽभूवन् ।  
 कलौ धर्मनृपस्याऽङ्ग-रक्षका इव ये बभुः ॥१३॥  
 आद्यस्तेषामशेषाध-लवनो लूणिकाभिधः ।  
 प्रतिकूलः कलेमल्ल-देवोऽभूदपरः पुनः ॥१४॥  
 श्रीवस्तुपाल इति पौरुषवेशम तेजः-पालश्च शुद्धमतिधाम तृतीय-तुर्योँ ।  
 तौ मन्त्रितामलभतां चतुरौ चुल(लु)क्य-वीरस्य वीरध्वलस्य धरामघोनः ॥१५॥  
 जाल-मायू-सायू-धनदेवी-सोहगा-वयजूकाऽखाः(ख्याः) ।  
 पद्मालदेवी चैषां, क्रमाद्विमाः सप्त सोदर्यः ॥१६॥  
 लीलू-पातू उभे कान्ते, मल्लदेवस्य मन्त्रिणः ।  
 लीलूभवः सुतः पूर्ण-सिंहस्तद्भूश्च पेथडः ॥१७॥  
 दयिते ललितादेवी-सूखलते वस्तुपालसचिवस्य ।  
 ललितादेव्या जात-स्तनयस्तु जयन्तसिंहाख्यः ॥१८॥  
 तेजःपालस्य धाम्नाऽपि, नाम्ना त्वनुपमा प्रिया ।  
 अपत्ये बकुलदेवी-लूणसिंहावजीजनत् ॥१९॥  
 वंश एष रघुवंश इवाऽस्मिन्, भूतले स्तुतिपदं न किमस्तु ।  
 यत्र साम्प्रतमिमौ सचिवेन्द्रौ, रामलक्ष्मणनिभौ विजयेते ॥२०॥  
 ॥ इति वंशाधिकारः प्रथमः ॥  
 विक्रमनृपकालाद् द्वा-शतमितसमयचूलिकाभूतान्(त्) ।  
 सप्ताधिकसप्ततिका-दारभ्य चुल(लु)क्यनृपसभ्यः ॥१॥  
 पुरनगरग्रामादिषु, धर्मस्थानानि धर्मिकः श्रीमान् ।  
 वस्तूनि वस्तुपालो, विविधानि विधापयामास ॥२॥ युग्मम् ॥

शत्रुञ्जयगिरौ पूर्व-मिन्द्रमण्डपसञ्ज्ञितम् ।  
 असौ कलितिरस्कारं, कारयामास कीर्तनम् ॥३॥ ६/६३६  
 तत्राऽम्बका-उवलोकन-शाम्ब-प्रद्युम्नसानुभिः ।  
 सह रैवततीर्थेन्दो-रसौ चैत्यमसूत्रयत् ॥४॥ ६/६३७  
 स्तम्भनकतीर्थनायक-चैत्ये तत्रैव कारितेऽकार्षीत् ।  
 निजनायक-निजदयिता-निजगुरु-निजबन्धु-निजमूर्तीः ॥५॥ ६/६३८  
 तत्राऽन्वितं श्रीजयतल्लदेव्याः(व्या), श्रीबीरभूपालमसौ निजेशम् ।  
 शचीसखं शक्रमिव द्विपेन्द्रा-धिरूढमूर्ति रचयाञ्छकार ॥६॥ ६/६३९  
 आत्मानमात्मानुजमप्यजस्मं, विश्राणितश्रीर्विदुषामिहाऽसौ ।  
 आरासनीयाशममयाश्वपृष्ठ-प्रतिष्ठमूर्ति घटयाञ्छकार ॥७॥ ६/६४०  
 तत्रैव मन्त्रिसुत्रामा, स कायोत्सर्गिणौ जिनौ ।  
 उर्ध्वर्दमौ जगद्रक्षा-यामिकाविव निर्ममे ॥८॥ ६/६४१  
 तत्रैव मण्डपे सप्ता-हृददेवकुलिकानिभान् ।  
 सप्ताऽपि दुर्गतीर्जित्वा, जयस्तम्भानरोपयत् ॥९॥ ६/६४४  
 तत्र श्रीशारदां वाच्य-दिव्यरूपद्वयीमसौ ।  
 शस्तां प्रशस्तिमूर्तिभ्यां, स्वहृदीव न्यवीविशत् ॥१०॥  
 प्रत्यगृद्वारगतं चन्द्र-कलासितसि(शि)लाशतैः ।  
 तत्रेन्द्रमण्डपे मन्त्री, तोरणं स व्यरीरचत् ॥११॥ ६/६४५  
 तत्राऽदिनाथतीर्थेन्दो-रसौ चैत्यपुरोभुवि ।  
 प्रतोलीं कारयाञ्छके, सह प्राकारवा(बा)हया ॥१२॥ ६/६४९  
 मुधाकृतसुधाकुण्डं, कुण्डं गजपदाभिधम् ।  
 सूत्रयामास मन्त्रीन्दु(न्द्र)-स्तत्र स्नात्रकृतेऽहताम् ॥१३॥ ६/६५०  
 स्वज्येष्ठयोर्लूणिग-मल्लदेवयो-मूर्तीं पृथग्मण्डपिका-हय-स्थिते ।  
 स कारयामास युगादिदेवता-गृहप्रवेशाध्वनि वामदक्ष(क्षि)णे ॥१४॥ ६/६५४  
 स वामतो दक्ष(क्षि)णतस्तथैतयोः, प्रत्येकमेवाऽमितपुण्यहेतवे ।  
 सङ्घाधिनाथस्य समाजमण्डपं, प्रशस्तिमद्वास्तु च वस्तुमातनोत् ॥१५॥  
 तदङ्गानि निधायाऽधः, स्तम्भे तीर्थेश(शि)तुः पुरः ।  
 असौ श्रीमल्लदेवस्य, मूर्ति स्थापितवानिह ॥१६॥

द्वारि युगादिजिनेन्दो-स्तोरणमारासनीयमतिविशदम् ।

व्यरचयदयमिह सुमहत्, पद्यामिव शिवपदारोहे ॥१७॥ ६/६५५

अभितोरणमुतुङ्ग-मत्तवारणमण्डिताम् ।

जगतीं रचयाञ्चक्रे, सेनामिव निजामयम् ॥१८॥ ६/६५९

तत्राऽदिनाथस्य पुरः प्रशस्ति-चतुष्किकायुग्ममसावकार्षीत् ।

विलोकयन्त्या इव तोरणं त-च्चैत्यप्रियो नेत्रयुग्मं विकासि ॥१९॥ ६/६६०

तत्राऽदिनाथधाम्नो, बलानकान् मण्डपे सतां विशताम् ।

दक्षिणपक्षे ललिता-देव्याः पुण्याय निजसधर्मिण्या(ण्याः) ॥२०॥ ६/६६१

सत्यपुराहं तीर्थं, श्रीवीरसनाथमकृत् सुकृती सः ।

स्व-स्ववधूमूर्तिश्री-ब्राह्मी-श्रीब्रह्मशान्तियुतम् ॥२१॥ ६/६६२ [युग्मम्]

तत्रैव वामपक्षे, सौख्यलतानामधेयधन्यायाः ।

अपरस्याः प्रेयस्याः, श्रेयोऽर्थमनर्थदलनसहम् ॥२२॥ ६/६६३

अश्वावबोधतीर्थं, मुनिसुव्रततीर्थनायकसनाथम् ।

समवसरणा-श्व-शकुनी-वटमुनियुग-मृगयुमूर्तियुतम् ॥२३॥ ६/६६४

जितशत्रु-श(शि)लामेघ-क्षितिपति-वणिजां सुदर्शनादेव्याः ।

स्वस्य च सौख्यलतायाः, सह मूर्तिभिरातनोदेषः ॥२४॥

[त्रिभिर्विशेषकम्] ६/६६५

उभयोरपि कीर्तनयो-रनयोः पुरतः प्रशस्तिमतिशस्ताम् ।

उपरि च हेमदण्डं, कलशं च कलाशयो विदधे ॥२५॥

तत्पुरतः प्रपितामह-चण्डप-चण्डप्रसादपुण्याय ।

विजयी सोऽजित-सम्भव-जिनयुगलं कारयामास ॥२६॥ ६/६६६

ललितादेव्याः स्वस्य च, मूर्त्योस्तत्रैव मण्डपे मन्त्री ।

देवकुलिकामकारय-दुदझमुखीं स्फटिकद्वाराम् ॥२७॥ ६/६६७

चतस्रश्च चतस्रश्च, दक्ष(क्षि)णोत्तरपक्षयोः ।

अकारयि(य)दसावादि-जिनचैत्ये चतुष्किकाः ॥२८॥ ६/६६८

नाऽभूद(द्वे)वकुलस्य, प्रमाणतः पूर्वमेष इति हैमम् ।

नाभेयचैत्यमू(मौ)ला-वकारयत् कलशमिह किल सः ॥२९॥

युगादिदेवायतनेऽत्र कुम्भ-त्रयं त्रयाणामपि मण्डपानाम् ।

प्रतापसिंहाधिप(भिध)पौत्रपुण्य-कृते कृतं स्वर्णमयं कृती सः ॥३०॥ ६/६७०

तत्रेन्द्रमण्डपासन्नं, तेजःपालोऽस्य चाऽनुजः ।  
 कीर्तनं विदधे कीर्ति-नन्दी नन्दीश्वराभिधः(धम्) ॥३२॥ ६/६७२  
 स्वसोदरीणां सप्तानां-मपि पुण्याभिवृद्धये ।  
 कुलीनो देवकुलिका-स्तदुपान्ते विनिर्ममे ॥३२॥  
 कान्तयोर्मल्लदेवस्य, लीलू-पातूसमाख्ययोः ।  
 तत्पुत्र-पौत्रयोः पूर्ण-सिंह-पेशडसज्जयोः ॥३३॥  
 श्रेयसे देवकुलिका-शतस्वस्तत्र कारिताः ।  
 तिस्रश्चाऽपि यशोराजः( ज )-श्रेष्ठिनः सुहृदोऽमुना ॥३४॥[युगमम्]  
 अनुपममतिरथमनुपम-देव्याः स्वस्याऽपि पुरुषमानेन ।  
 आरासनीयमस्मिन्, मूर्त्तियुगं कारयामासे ॥३५॥ ६/६७६  
 व्यधादनुपमाप्रिया-ऽनुपमपुण्यसंसिद्धये,  
 सुधीरनुपमासरस्तदुपकण्ठकुञ्जान्तरे ।  
 तटेऽस्य जिनपूजनव्यतिकराय किञ्च द्युसद्-  
 वनाभिनयनाटिकामकृत वाटिकामप्यसौ ॥३६॥ ६/६७७  
 सरःक्षीरार्णवस्याऽस्य, तीरे तत्रैव तेनिवान् ।  
 वेलाशैलौ कपर्दीम्बा-देवतालयकैतवात् ॥३७॥  
 पद्माबन्धमसौ तत्र, तडागतिलकोपरि ।  
 कपर्दियक्ष्य(क्षं) शैलश्री-सीमन्ततिलकं व्यधात् ॥३८॥ ६/६७९  
 शैलेऽमुत्र कपर्दियक्षभवनं श्रीवस्तुपालः पुनः,  
 पूर्वं जर्जरमुद्धार विदधे चाऽस्याऽग्रतस्तोरणम् ।  
 किं चैतत्परिधौ चकार जगतीमारासनीयं(यां) व्यधाद्-  
 द्वारं गर्भगृहस्य खत्तकमिहाऽतेने च पार्श्वप्रभोः ॥३९॥ ६/६८०  
 अस्ति श्रीवाग्भटपुरं, शान्तुञ्जयगिरेरधः ।  
 तत्र सङ्घरुषावारि, न वारि समभूत पुरा ॥४०॥  
 मत्वैतत्पुरतः पुरोऽस्ति(पुरस्य) ललितादेवि(वी)प्रियाश्रेयसे,  
 चक्रेऽसौ ललितासरोऽतिविमलं श्रीवस्तुपालः कृती ।  
 स्फारद्वार(रि)विराजितस्य कुरुते क्रौञ्चालयस्य भ्रमं,  
 भूम्ना तोरणमात्तमानसरुचेर्यस्य प्रवेशावनौ ॥४१॥ ६/६८४

रवि-शङ्कर-सावित्री-वीरजिना-उम्बा-कर्पर्दियक्ष्या( क्षा )णाम् ।

धामानि धार्मिकोऽसौ, चक्रे ललितासरःसेतौ ॥४२॥ ६/६८५

गुरुमूर्त्या प्रशस्त्या, सनाथामक्षरात्मना ।

स वाग्भटपुरस्याऽन्तः, कुट्टिमां वसति व्यधात् ॥४३॥

तद्विहस्तु प्रपां चक्रे, पयोधरघटोद्भटाम् ।

धात्रीमिवाऽत्मजस्याऽयं, यशसो वृद्धिहेतवे ॥४४॥

वस्तुपालगिरिसञ्जितामसा-म(व)श्मबद्धपृथ(थु)कूपबन्धुराम् ।

आदिनाथजिनपूजनार्थमा-सूत्रयुक्त(यत्)[कु]सुमवाटिकामिह ॥४५॥

शत्रुञ्जयमहातीर्थ-घण्टापथविभूषणम् ।

वलभ्यामुद्धाराऽसौ, युगादिजिनमन्दिरम् ॥१६॥ ६/६८७

कूपं तत्र सुधाकुण्ड-रूपं चिद्रूपचन्द्रमाः ।

प्रपां च जन्यपञ्चाभ(पाञ्चजन्याभ)-कीर्तिः कारितवानयम् ॥१७॥

वटकूपकमण्डपिका-स्थितकेन समं चकार सचिवोऽयम् ।

शत्रुञ्जयसाद् ग्रामं, वालाके भण्डपद्माख्यम् ॥४८॥

वालाकें(के)ऽर्कपालितकं, वीरेज्यं चतुरुक्तरे ।

शत्रुञ्जयत्रा कृतवा-नयं ग्रामद्वयं तथा ॥४९॥

वस्तुपालविहारं स, वस्तुपालेश्वरं तथा ।

प्रपा-सत्रे च विदधे, ग्रामे वीरेज्यनामनि ॥५०॥ ६/६९०

धर्मार्थं जनकस्य जैनभवनं पुण्याय मातुः प्रपां,

पित्रोः पुण्यसमृद्धिहेतुकमथो सत्रं पवित्राऽशयः ।

स्वश्रेयःकृतये सरः पुरभिदा(दो) देवस्य हर्ष्य तथा,

पान्थारामकुटीमथाऽयमकृत ग्रामेऽर्कपालीयके ॥५१॥

॥ इति शत्रुञ्जयाधिकारो द्वितीयः ॥

रैवताचलचूलायां, पृष्ठे श्रीनेमिवेशमनः ।

शत्रुञ्जयपतेश्वैत्य-मात्मश्रेयोऽभिवृद्धये ॥१॥ ६/६९९

मन्त्रिवास्तोस्पतिर्वस्तु-पालो विध्वस्तकन्मुखं(कल्मषम्) ।

वस्तुपालविहाराख्य-मकारीदेष कीर्तनम् ॥२॥ [युगमम्] ६/७००

निजपूर्वजयोश्शण्डप-चण्डप्रसादयोः स सुकृताय ।  
 तत्कमलीभित्तियुगे-उतिष्ठिपदजितं च वासुपूज्यं च ॥३॥ ६/७०३  
 तन्मण्डपे चण्डपसज्जितस्य, महत्प्रमाणां प्रपितामहस्य ।  
 मूर्ति तथा वीरजिनेन्द्रबिष्व-मथाऽम्बिकामूर्तिमिमामकार्षीत् ॥४॥  
 तत्र गर्भगृहद्वारे, दक्ष(क्षिः)णोत्तरपक्षयोः ।  
 स्व( स्वं ) च स्वमनुजं चैषा(ष), गजारूढमतिष्ठिपत् ॥५॥  
 ललितादेवीश्रेयः-कृते च तस्यैष पक्षके वामे ।  
 पूर्वजमूर्तिसमेतं, सम्पेतं कारयामास ॥६॥ ६/७०६  
 ललितादेव्याः स्वस्य च, मूर्ती तत्र महोन्तै(ते) ।  
 रोहिणीचन्द्रनिस्तन्द्र-रुचिः सोऽयमचीकरत् ॥७॥  
 सौख्यलतासुकृताया-उष्टापदमथ तस्य दक्ष(क्षिः)णे पक्षे ।  
 निजजननी-निजभगिनी-मूर्तियुगं निर्ममे चैष(:) ॥८॥ ६/७०७  
 स्वस्य सौख्यलतायाश्च, मूर्तीवर्णसमुज्ज्वले ।  
 प्रशस्तिपट्टके चाऽत्र, चक्रे सुश्लोकपेशले ॥९॥  
 प्रासादत्रितयस्याऽस्य, जगत्त्रितयचित्रकृत् ।  
 तोरणत्रितयं चक्रे, स विद्यात्रितयाश्रयायः) ॥१०॥ ६/७०८  
 वस्तुपालविहारस्य, पृष्ठेऽनुचरसम्भवम् ।  
 कपर्द(र्दि)यक्षाऽयतन-मकारयदयं कृती ॥११॥ ६/७०९  
 मातुर्युगादिदेवस्य, मरुदेव्या निकेतनम् ।  
 गजस्थमूर्ति तत्रैव, मातुर्गर्भे सिस) तेनिवान् ॥१२॥ ६/७१०  
 तोरणत्रयमातेने, तेनेन्दुविशदाशमभिः ।  
 त्रिद्वारमण्डपद्वार-गतं श्रीनेमिवेशमनि ॥१३॥ ६/७१२  
 त्रिकेऽसौ नेमिचैत्यस्य, दक्ष(क्षिः)णोत्तरपक्षयोः ।  
 पितुः पितामहस्याऽपि, मूर्ती वाजिस्थिते व्यधात् ॥१४॥ ६/७१३  
 तयोरयं पित्र(त्र)पिता-महमूर्त्योः समीपगे ।  
 साम्बा-पितामहीमूर्ती(र्तिः), विदधे विशदाशमना ॥१५॥  
 स्वपित्रोः श्रेयसे च, श्रीनेमिचैत्यत्रिकावनौ ।  
 स कायोत्सर्गिणौ चक्रे-उजित-शान्तिजिनेश्वरौ ॥१६॥ ६/७१४

..... ]बभौऽमुना मण्डपिकासमेतः ॥१७॥  
 पांपा-मठस्य सविधे विदधे जिनानां,  
 तिस्तः स देवकुलिकाः कुलकैरवेन्दुः ।  
 वाग्देवताप्रतिमया सहिताः प्रशस्ति-  
 युक्ता युताश्च निजपूर्वजमूर्तियुग्मैः ॥१८॥  
 श्रीनेमिमण्डपे तुङ्गे, कुले च विपुले निजे ।  
 कल्याणकलशं दिष्ट्या, स धीमानध्यरोपयत् ॥१९॥ ६/७२३  
 अम्बिकायाश्च सदने, मण्डपोऽनेन कारितः ।  
 आरासनी आ(चा)र्हदेव-कुलिका चाऽत्र सूत्रिता ॥२०॥ ६/७२४  
 अम्बिकायाः परिकर-श्वारुद्धाऽरासनाशमना ।  
 विशदि(दे)न निजेनैव, यशसाऽनेन कारितः ॥२१॥ ६/७२५  
 अवलोकन-श(शा)म्ब-प्रद्युम्नप्रस्थेषु विशदपाषाणैः ।  
 विधित(विहितं) जिनदेवकुलिका-त्रितयं पुरुषमूर्तियुतम् ॥२२॥  
 पित्रोः स्वीयपितुर्जगद्विद(दि)तयोः श्रीसोमसीताक्ष(ख्य)यो-  
 राशाराज-कुमारदेव्यभिधयौस्ताताम्बयोरात्मनः ।  
 जाल्ह(जाल्हू)नामजुषः स्वसुर्वसुमतीक्रोडे तदङ्गान्यधः-  
 क्षिप्त्वा रैवतदेवताऽलयपुरः स्तम्भानयं निर्ममे ॥२३॥  
 अधस्तादुज्जयन्तस्य, तेजःपालप(पु)रं नवम् ।  
 हट्ट-[ह]म्र्य-प्रपा-वापी-सङ्घेशगृहशोभितम् ॥२४॥ ६/७३६  
 तेजःपालाभिधस्तस्या-ऽवरजो विरजस्तमाः ।  
 अमायः सङ्घवासाय, धुःप्र(प्रा)कारमकारयत् ॥२५॥ [युग्मम्]  
 आशाराजविहारसञ्ज(ञ्ज)तमसौ श्रीपार्श्वचैत्यं पितुः,  
 श्रेयोर्थं वसति च पुष्कलतरामस्याऽन्तरा तेनिवान् ।  
 तद्वाहये च कुमारदेविसर अ(इ)त्युल्लोलकल्लोलमत्,  
 मातुः पुण्यकृते कृती विरचयाञ्चके विशालं सरः ॥२६॥ ६/७३९  
 श्रीपार्श्वनाथपूजार्थ-मुद्यानमतिकोमलम् ।  
 असूत्रयदसौ तत्र-मुद्यानमतिकोमलम् ॥२७॥ ६/७४१

स्वपुरी-वामनपुरीप्रान्तरे खातदुस्तरे ।  
 व्यधाद्वार्पीं प्रधानार्पीं, मल्लदेवानुजानुजः ॥२८॥ ६/७४२  
 वसति वामनस्थल्यां, कौमुदं तन्वन्ती(ती)मयम् ।  
 सदा यामवतों चन्द्रो-दयचारुमकारयत् ॥२९॥ ६/७४३  
 श्रीवीरध्वल-जयतल-देव्योर्नाम्नोज्जयन्तमार्गऽसौ ।  
 हर-जिनगृह-सत्र-सरः-प्रणा इंधुमधुरे पुरे तेने ॥३०॥  
 वस्त्रापथे च प्रथमे-शस्य मन्दिरमुत्तमम् ।  
 विशालं कालमेघस्य, मण्डपं च व्यपञ्चयत् ॥३१॥  
 ग्रामः कुहेडीति क्ष(क्षि)तौरुसंस्थाः, प्रस्थाश्च पञ्चाशदिहोर्वरायाः ।  
 चक्रेऽमुना स्थानतपोधनस्य, वस्त्रापथे सङ्घकराभिमुक्तौ ॥३२॥

॥ इति श्रीरैवताधिकारस्तृतीयः ॥

श्रीदेवपत्तनपुरे, श्रीसोमेशमहेश(शि)तुः ।  
 जगत्यां श्रेयसे भर्तुः, श्रीवीरध्वलेश्वरम् ॥१॥  
 जयतल्लेश्वरं चैतन्महिष्याः पुण्यहेतवे ।  
 सच्चिवो रचयामास, वस्तुपालः सविस्तरम् ॥२॥ [युग्मम्]  
 एतयोर्मूर्तियुगली-मयमारासनाशमना ।  
 चक्रे श्रीसोमनाथस्य, रङ्गमण्डपखत्तके ॥३॥  
 स्वस्वामिसुकृताय श्री-सोमनाथमहेश(शि)तुः ।  
 माणिक्यखचितां मुण्ड-मालामयमकारयत् ॥४॥  
 स्नात्रकुण्डीं विभोस्तत्र, कलधौतविभासिताम् ।  
 शीर्णा समुद्धाराऽसौ, चन्द्रमूर्तिमिवाऽर्यमा ॥५॥  
 द्विस(श)त्या सचतुःषष्ठ्या, स्वर्णगद्याणकैरसौ ।  
 तत्रोमाभरणं सौक्ष्य(ख्य)-लतापुण्यकृतेऽकृता(त) ॥६॥  
 सोमनाथपुरतो निजकीर्त्याः, क्रीडपर्वतनिभं करियुग्मम् ।  
 तुङ्गमश्मयमत्र वितेने, तेजः(ज)पालसचिवस्तु सुवस्तु ॥७॥  
 सोमनाथविभोर्लङ्घ-मन्दरं परितोऽमुना ।  
 चतुःकाष्ठीं विधायाऽत्र, विधाताऽपि व्यजीयत ॥८॥

तत्र चन्द्रप्रभस्वामि-सदनस्याऽन्तिकेऽमुना ।  
 चतुर्विशतिरीर्थेश-प्रासादोऽष्टपदः कृतः ॥९॥ ६/५३७  
 पौषधशालामौषधि-पतिमूर्तिमिवोज्ज्वलां सुधासारैः ।  
 जनतापापहरामिय-मकृत कृती तत्र नभसीव ॥१०॥ ६/५३८  
 अष्टपदस्य पौषध-शालाया अपि च तत्र सचिवोऽयम् ।  
 आयार्थमङ्गमालां, गृहमालां च व्यधापयत् ॥११॥

॥ इति देवकपत्तनीयाधिकारश्तुर्थः ॥

मन्त्री भृगुपुरे वस्तु-पालो वस्तुविचारवित् ।  
 शकुनीविहारकरिणा, भेतुमात्मभवाग्र(र्ग)लाम् ॥१॥ ४/१५७  
 तमुखे देवकुलिका-द्वयं दन्तद्वयोपमम् ।  
 आरादारासनीयाश्म-मयं स्फारमकारयत् ॥२॥ ४/१५८ [युग्मम्]  
 तदगूढमण्डपेऽजित-शान्त्याख्यं परिकस्थरेषजिनम् ।  
 ललितादेव्याः स्वस्य च, सुकृताय चकार जिनयुगलम् ॥३॥ ४/१५९  
 तदगूढमण्डपक्रोडे, विशतां दक्षिणे सताम् ।  
 स्वमूर्ति कारयामास, ललितां(ता)कलितां(ता)मयम् ॥४॥ ४/१६०  
 पित्तलानिर्मितां स्नात्र-प्रतिमां सुब्रतप्रभोः ।  
 लेपमूर्तेरलेपात्मा, तेजपालोऽत्र तेनिवान् ॥५॥ ४/१६१  
 तत्र स्नात्रप्रतिमा-पृष्ठे पुरतश्च सुब्रतजिनेन्दोः ।  
 मूर्तिमकारयदनुपम-देव्याः स्वस्याऽपि सुकृती सः ॥६॥  
 तत्राऽश्वबोधतीर्थे, परितस्तीर्थेशदेवकुलिकानाम् ।  
 दण्डांश्च पञ्चविशति-मकारयत् काञ्चनाते(ने)षः ॥७॥ ४/१६२  
 पुराद् बहिरसौ पुष्प-वनं तलतमालवत् ।  
 चक्रे जिनार्चनविधा-वनन्ते(न्त)लतमालवत् ॥८॥ ४/१६३  
 वडऊसणपल्लीस्थित-चैत्ययोर्मूलनायकौ ।  
 नाभेय-नेमिनौ वस्तु-पालस्तु समतिष्ठ(ष्ठ)पत् ॥९॥ ४/१६४

॥ इति भृगुकच्छाधिकारः पञ्चमः ॥

दर्भोर्वीनगरे वैद्य-नाथावा(व)सथमण्डपे ।  
 वस्तुपालो व्यधात् स्वर्ण-कुम्भानेकोनर्विशतिम् ॥१॥ ३/३७१  
 स्वेश-तत्रियतमा-स्वकनिष्ठ-ज्येष्ठमूर्ति-निजमूर्त्तिसनाथम् ।  
 वैद्यनाथरगर्भगृहाग्रै(ग्रे), वामतो व्यधित खत्तकमेषः ॥२॥ ३/३७२  
 नव स्वर्णमयांस्तत्र, खत्तके कलशानयम् ।  
 नवखण्डधरोद्योति(तेऽ)-करोत्प्रद्योतनानिव ॥३॥ ३/३७३  
 पश्चिमोत्तरयोर्वैद्य-शाल(ली)यद्वारयोरयम् ।  
 प्रशस्ती न्यस्तवानात्म-कीर्तिमङ्गलपाठ(ठि)के ॥४॥ ३/३७४  
 उत्तरद्वारपुरतो, वैद्यनाथस्य वेशमनः ।  
 असूत्रयदसौ तुङ्गं, तोरणं विशदाशमभिः ॥५॥ ३/३७६  
 वृषभण्डपिकां द्विभूमिकां, विशदैरशमभिरस्य बान्धवः ।  
 इह काञ्छनकुम्भशोभितां, पुरतो वैद्यपतेः प्रतेनिवान् ॥६॥  
 तथाऽसौ निजनाथस्य, कालक्षेत्र(त्रे?) तदाख्यया ।  
 रेवोरि(रु)सङ्गमो(मे) वीरो(रे)-श्वरदेवकुलं व्यधात् ॥७॥

॥ इति दर्भावित्यधिकारः षष्ठः ॥

स्तम्भनके च शलाका-मुदधे पार्श्वनाथभवनस्य ।  
 दण्डकलशौ च काञ्छन-मयौ व्यधाद्वस्तुपालोऽत्र ॥१॥  
 नाभेय-शैवेयजिनेशखत्तके, सद्वारपत्रं च सिताशमसुन्दरम् ।  
 तत्र प्रशस्ति च गिरिं च देवता-मकारयत् कारयितव्यकोविदः ॥२॥  
 साधितोभयलोकाप्त-जन्मनोरयमात्मनः ।  
 कीर्त्योर्देलानिभं तत्र, तोरणद्वयमातनोत् ॥३॥  
 पुरे स्तम्भनके तस्मि-नेकां वापीमपाधीः ।  
 द्वे प्रपे त्रीनयं शालान्, विशालान् परितो व्यधात् ॥४॥

॥ इति स्तम्भनाधिकारः सप्तमः ॥

वस्तुपालस्ततो जैत्रः, पेटलापद्रपत्तने ।  
 दिग्म्बरजिनागारे, धनपालेन कारिते ॥१॥  
 मातामहस्य सुकृतौ(त)-कृते कान्हडमन्त्रिणः ।  
 मूलनायकमर्हन्तं, नेमिनाथं न्यवीविशत् ॥२॥ [युगम्]

तत्रैव पत्तने जैत्र-सिंहोऽयमतिपुष्करम् ।  
 मण्डलं पेटलार्यायाः, पद्रदेव्याः पुरोऽकरोत् ॥३॥  
 मन्त्री मसूयडग्राम-गम्भीराग्रामचैत्ययोः ।  
 वस्तुपालस्तु नाभेय-वामेयौ न्यस्तवान् जिनौ ॥४॥  
 स्वस्यैष ललितादेव्याः(व्या), अपि पुण्याभिवृद्धये ।  
 जयादित्यं नगरके, रत्नादेवीमकारयत् ॥५॥

॥ इति पेटलापद्राधिकारोऽष्टमः ॥

स्तम्भतीर्थपुरे वस्तु-पालो मन्त्रिपुरन्दरः ।  
 कीर्तने शालिगस्योच्चै-रुद्धे गूढमण्डपम् ॥१॥ ४/६७३  
 तत्र गर्भगृहद्वार-श्रियो लीलासरोरुहम् ।  
 स्वस्याऽप्यवरजस्याऽप्य(पि), स तेने मूर्तिखत्तकम् ॥२॥ ४/६७४  
 गौ(गु)र्जरान्वयिनो लक्ष्मी-धरस्य सुकृताय सः ।  
 तस्यैव परिधावष्टा-पदोद्धारमकारयत् ॥३॥ ४/६७५  
 पुण्यायाऽम्बडदेवस्य, वैरिसिंहाभिधस्य च ।  
 तत्पक्ष-चैत्ययोः सोऽहंद्विम्बे पृथग्(ग)तिष्ठिपत् ॥४॥ ४/६७६  
 तथौ(थो)सिवालगच्छीय-पार्श्वनाथजिनालये ।  
 स्वस्याऽपि स्वाइगजस्याऽपि, मूर्त्ती कारयति स्म सः ॥५॥ ४/६७७  
 श्रेयांसमात्माग्रजपुण्यहेतोः, स्वपुण्यहेतोश्च युगादिदेवम् ।  
 स्वकान्तयोः पुण्यकृते च नाभि-सिद्धार्थजावेष जिनावकार्षीत् ॥६॥ ४/६७८  
 सैव मोक्षपुरद्वार-तोरणस्तम्भसन्निभौ ।  
 तदगृहमण्डपे कायो-त्सर्गिणौ विदधे जिनौ ॥७॥ ४/६७९  
 थारापद्रकगच्छीय-शान्तिनाथजिनालये ।  
 बलानकं त्रिकं गूढ-मण्डपं प्रोद्धधार सः ॥८॥  
 तत्रैव केलिकाख्यायाः, पुण्यहेतोः पितृष्वसुः ।  
 पितृव्यस्यैष तिहुण-पालस्य सुकृताय च ॥९॥ ४/६८१  
 स्वश्रेयसे च क्रमतः, श(स)म्भवं नाभिनन्दनम् ।  
 शारदां पद्मशालायां, कारितायामतिष्ठिपत् ॥१०॥ [युगम्] ४/६८२

तथा शत्रुघ्नयाख्ये च, सदने प्रथमार्हतः ।  
 श्रीनेमि-पार्श्वजिनयोः, स देवकुलिके व्यधात् ॥१२॥ ४/६८३  
 प्रागवाटवंशोद्धवकृष्णदेव-राणूतनूसम्भवयोः स्वपत्न्योः ।  
 श्रेयोभिवृद्ध्यै मथुराभिधाने, जिनालये सत्यपुराभिधे च ॥१२॥ ४/६८४  
 बलानकं च त्रिकमण्डपौ च, पुरः प्रतोलीं परितो वरण्डम् ।  
 मठं तथाऽद्ध्रुयमद्वषट्कं, क्रमेण मन्त्री रचयाञ्चकार ॥१३॥ [युगम्] ४/६८५  
 क्षपणार्हद्वसहिका-मेकामेकां च तत्प्रिया ।  
 तथोद्धार ललिता-देवीकान्तः स कान्तधीः ॥१४॥ ४/६८६  
 तथाऽसो(सौ) वीरनाथस्य, रथशालामकारयत् ।  
 मठमद्ध्रुयं चैत-दायदानाय निर्ममे ॥१५॥ ४/६८७  
 गुहायामिव पूवद्रि-श्नन्दं विश्वतमोपहम् ।  
 तत्रैव रथशालायां, नेमिनाथमकारयत् ॥१६॥ ४/६८८  
 इतश्च पल्लीबालाख्य-वंशे शोभनदेवभूः ।  
 अभूदजयसिंहाख्यो, भण्डशाली महामनाः ॥१७॥ ४/६८९  
 सङ्ग्रामसिंहसङ्ग्राम-व्यसनोपशमाय स ।  
 स्वमौलिं वस्तुपालार्थे, द्वुण्डदेवबलिं व्यधात् ॥१८॥ ४/६९०  
 तन्मूर्ति(र्ति) रोघडीचैत्ये, कृतशोऽयमकारयत् ।  
 तच्छ्रेयसे च जैनेन्द्र-बिष्बमेकमतिष्ठिपत् ॥१९॥ ४/६९१  
 रोघडीचैत्यदेवेन्दो-रादिनाथजिनेशितुः ।  
 शाकमण्डपिकामाय-दाने कल्पयति स्म सः ॥२०॥ ४/६९२  
 तथा ब्रह्माणगच्छीय-नेमिनाथजिनालये ।  
 जिनेन्दोरादिनाथस्य, स देवकुलिकां व्यधात् ॥२१॥ ४/६९३  
 तथा सण्डेरगच्छीय-मल्लिनाथजिनालये ।  
 प्रियासौख्यलताश्रेयः-कृते सीमन्धरप्रभोः ॥२२॥ ४/६९४  
 उदारमण्डपां देव-कुलिकामयमातनोन्(त्) ।  
 युगन्धरं च बाहुं च, स(सु)बाहुं च जिनाधिपम् ॥२३॥ [युगम्] ४/६९५  
 भावडाचार्यगच्छीयः, समुद्ध्रेऽमुना तथा ।  
 जिनत्रयाख्यः प्रासादः, श्रीमत्पार्श्वजिनेश(शि)तुः ॥२४॥ ४/६९६

श्रीकुमारविहारेऽसा-वकार्षीन् मूलनायकम् ।  
 तदाये हृष्टिकां चैकां, तन्दुलेच्छा(लोच्छ)मतिव्य(व्यं)धात् ॥२५॥ ४/६९७  
 पौत्रप्रतापर्सिंहस्य, तद्भ्रातुश्च कनीयसः ।  
 श्रेयसे किञ्च त्राजर्हत्-खत्तके द्वे चकार सः ॥२६॥ ४/६९८  
 आसराजविहारस्य(राख्यं), प्रासादमृषभप्रभोः ।  
 कुमारदेवीवी(वि)हार-नामधेयं च नेमिनः ॥२७॥ ४/६९९  
 एकस्थणिडलबन्धेनो-भयं तत्कृतसंश्रयम् ।  
 एकनिर्गमनद्वारं, द्विप्रवेशबलानकम् ॥२८॥ ४/६९९  
 अष्टमण्डपमुदण्ड-द्विपञ्चाशज्जनालयम् ।  
 आरासनोत्तानपट्ट-द्वारपत्रपवित्रितम् ॥२९॥ ४/७००  
 शत्रुञ्जयोज्जयन्ताद्रि-तीर्थयो(ः) प्रतिहस्तकम् ।  
 पित्रोः श्रेय(ः)कृते तत्रो-तुङ्गा(ङ्गं) कारयति स्म सः ॥३०॥  
 ([चतुर्भिः] कलापकम्) ४/७०२  
 तदाये हृष्टके द्वे तु, चतु(त)स्तो गेहपाठिकाः ।  
 वाटिकामप्यसावेकां, ददावेकान्तधार्मिकः ॥३१॥ ४/७०३  
 आसराजविहारे च, पित्तलम्पयमुच्चकैः ।  
 असौ चकार समव-सरणं कारणं श्रियः ॥३२॥ ४/७०४  
 वसतीरिह चारित्र-प्रतिष्ठानवतीरयम् ।  
 पञ्च प्रपञ्चयामास, भवाम्भोधौ तरीरिव ॥३३॥ ४/७०५  
 सङ्ख्ये शङ्खमहीपतेः समपतन् ये भूणपालादयो,  
 वीरा विक्रमवृत्तिनिर्मलकथावाचालितोर्वितलाः ।  
 तत्तनामनिरूपणानि स महीतीरे महीयान् दश,  
 स्थाणोर्देवकुलानि दुर्जनकुलश्रीबन्द(न्दि)कारोऽकरोत् ॥३४॥ ४/७१०  
 स्वगोप्रदेवतायाः श्री-चण्डकायास्तथाऽम्बुधेः ।  
 ज[ग]त्यामेतदीयायां, स देवकुलिके व्यधात् ॥३५॥  
 शङ्खेम(न) कृतपूर्वी सः, आसराजसुतो रणम् ।  
 तत्पुरः कारयामास, चतुःस्तम्भेस(षु) तोरणम् ॥३६॥  
 तपोधनमहं चैतत्, प्रतिबद्धमकारयत् ।  
 प्रभूतमेतदायं च, नानाविधमकारयत् ॥३७॥

तथा भीमेश्वरशिवायतने स वितेनिवान् ।  
 शातकुम्भमये कुम्भ-दण्ड(ण्डे) चण्डांशुरोचिषा ॥३८॥

तद्रभंगेहे स्वकुल-देवतां चण्डिकामसौ ।  
 मूर्ती स्वस्याऽनुजस्याऽपि, खत्तकान्तरकारयत् ॥३९॥

तदीयपरिधौ दोलां, तत्पुरो वृषभं शुभम् ।  
 तद्दद्रखत्तके चण्डी-मण्डपं नव्यमातनोत् ॥४०॥

स्वकान्ताललितादेव्याः, श्रेयसे तत्र सुन्दरम् ।  
 स मन्त्री वटसावित्री-देवतायतनं व्यधात् ॥४१॥

भीमेश्वरशिवागारं, परितोऽसौ वरण्डकम् ।  
 पुरतः स प्रतोलीक-मलीकविमुखो वि(व्य)धात् ॥४२॥

कुमासमण्डपिकायाः, समीपेऽसौ प्रपां व्यधात् ।  
 तृष्णाच्छिदे सुमनसा-मिन्दुर्मू(मू)र्तिमिवोज्ज्वलाम् ॥४३॥

निष्वैयकगणेशस्य, बकुलस्वामिभास्वतः ।  
 कुमारेश्वररुद्रस्य, मण्डपं स व्यरीरचत् ॥४४॥

चत्वरमुग्धचतुष्पन्थ-गणेश-कपिलेश-वैद्यनाथानाम् ।  
 भवनोद्धारं कृत्वा, कृतोऽमुना कृतयुगोद्धारः ॥४५॥

मूर्ति श्रीमल्लदेवस्य, वैद्यनाथान्तिके तथा ।  
 स्वस्य मूर्ति(र्ति) व्यधादेष, कुमारेश्वरसन्निधौ ॥४६॥

तुङ्गकुट्टिमिवश्रान्त-द्विजराजकुटुम्बकाम् ।  
 अजिह्मधीरसौ ब्रह्म-पुरीमेकामकारयत् ॥४७॥ ४/७११

तद्वासिवाडकेयो(भ्यो)ऽसौ, वाटकांश्च त्रयोदश ।  
 ददौ बभ्राम कीर्तिस्तु, भुवनानि चतुर्दश ॥४८॥ ४/७१२

षट्कर्मनिरतेभ्यस्तद-द्विजेभ्यः सुकृतात्मना ।  
 रामपल्लडिकाग्राम-स्तेनाऽदीयत शासने ॥४९॥ ४/७१३

तथा श्रीमल्लदेवाङ्ग-भुवः पुण्याभिवृद्धये ।  
 पूर्णसिंहेश्वरं रुद्र-भवनं स व्यरीरचत् ॥५०॥

अनेकरिपुसङ्गग्राम-हतपादातनामभिः ।  
 चतुर्दर्शैष तत्पाशर्वे, रुद्रधामान्यकारयत् ॥५१॥

तदाये समठामेका-मयं प्राकारि(र)कावृत्ता(ता)म् ।  
 व्यधात् पलडिके द्वे तु, मुत्कले वासमुत्कले ॥५२॥  
 तत्र पौरोपकाराय, चिद्रूपः कूपकैतवात् ।  
 पातालतः सुधाकुण्ड-मेकमाहूतवानयम् ॥५३॥ ४/७१४  
 प्रस्थापयितुमात्मीय-कीर्तिं भोगपुरीमिव ।  
 खातमातनुते स्वायं(चाऽयं?), तडागे मादनाभि(धे?) ॥५४॥  
 भद्रादित्यस्य श(शि)रसि, स्वर्णश्रीकलितोऽमुना ।  
 मुकुटः कुसुमोद्याने-ऽवटश्च निरमीयत ॥५५॥  
 भद्रादित्ये तथोत्तान-पद्मादिकमनेकधा ।  
 अकारयदसौ यद् यद् तत् तद्वेति स एव सः(हि) ॥५६॥  
 अकारयदसौ चू(मू)ला-देव देवो द्विभूमिकम् ।  
 राजसौधोपमं मन्त्रि-मन्दिरं मन्दुरान्वितम् ॥५७॥  
 विस्तारयत्(न) भुवि यशो, राजधाम सुधासितम् ।  
 तत्रोद्धार स यशो-राजधाम सुधासितम् ॥५८॥  
 पौत्रप्रतापसिंहस्य, पुण्यायाऽसौ प्रपां व्यधात् ।  
 तदाये च ददौ भूमि-हृष्टार्दिक्मनेकधा ॥५९॥  
 एकल्लब्दीराभिधपदेवता-निकेतने चण्डपवंशकेतनम् ।  
 सतोरणे तत्र समत्तवारणे, सोपानपीठे रचयाञ्छकार सः ॥६०॥  
 एकल्लब्दीराजलपट्टमुत्ता-नपट्टमस्मिन् विशदाशमवृद्धैः ।  
 द्वारान्वितं गर्भगृहं च वर्ध-मानाशमना सो(ऽसौ) घटयाञ्छकार ॥६१॥  
 ॥ इति स्तम्भतीर्थाधिकारो नवमः ॥

वस्तुपालो निजाम्बायाः, श्रेयसे ध्वलवक्कके ।  
 अम्बावसतिनामानं, प्रासादं वृषभप्रभोः ॥१॥  
 स्वपूर्वज-स्वसौ(सो)दर्य-सोदरी-स्वजनात्मनाम् ।  
 पुण्यार्थं परितः क्लृप्तः(प्ता)-नै(ने)करूपं जिनालयम् ॥२॥  
 आयार्थं विहितानेक-हट्ट-हर्म्योरुषा(पा)टिकम् ।  
 ध्वजाचलापनीताशा-रजोभारमकारयत् ॥३॥ ([त्रिभिः] विशेषकम्)

राणभद्रारकाणां तद्-बहिर्देवकुलोद्भृतिम् ।  
 गोग्रहत्यक्तदेहैक-पक्षपाताच्चकार सः ॥४॥  
 जगतीयुक्तहस्ताभं, तत्पुरस्तोरणं नवम् ।  
 स्वमातुः श्रेयसे वापीं, शालामापीमपि व्यधात् ॥५॥  
 वीरमस्य च सङ्ग्राम-सिंहसङ्ग्रामपातिनः ।  
 स्वपतेः श्रेयसे तत्र, चक्रेऽसौ वीरमेश्वरम् ॥६॥  
 श्रेयसे च निजाम्बाया, वाउडाग्राममण्डनम् ।  
 भवनं नेमिनाथस्य, रम्याकारमकारयत् ॥७॥  
 तेजःपालस्तु धवल-कक्क(के) स्फाराम्बकप्रभम् ।  
 स्वपाप(स्वापत्य)द्वयपुण्याय, विदधे वसतिद्वयम् ॥८॥  
 धवलकक्षियो दन्ता-निव चैत्यापदेशन(तः) ।  
 उद्ध्रेपे पतितांस्तेजः-पालः पुण्यरसायनी ॥९॥  
 भृगुकच्छाभिधं चैत्य-ममुनोद्भृत्य धीमता ।  
 पुरं(रः) श्री(श्रीः) स्वप्रशंसायां, विहितोर्ध्वीकृताङ्गुलिः ॥१०॥  
 श्रीमल्लदेवदयिता-लीलूपुण्याय च प्रपाम् ।  
 आघाटं वैद्यनाथस्य, समीपे कृतवानयम् ॥११॥  
 वापीमापीनसुकृतः, प्रपामपि कृपानिधिः ।  
 वस्तुपालसुतो यै(जै)त्र-सिंहस्तत्र पुरे व्यधात् ॥१२॥  
 तेजःपालाङ्गजो लूण-सिंहस्तु धवलकक्के ।  
 व्यधात् ब्रह्मपुरी-कूप-प्रपा विप्रोल्लसत्प्रापाः ॥१३॥  
 असौ तामसिजग्रामे, तृष्णातापरजोहराम् ।  
 प्रपां च वाटिकां चार्झद्व-वसर्ति च विनिर्ममे ॥१४॥  
 श्रीवस्तुपालस्तु चकार वीर-पुरं श्वा(च) वीरस्य निजेश्वरस्य ।  
 नाम्ना सरः-कूप-निपान-वापी-सत्र-प्रपा-५५राममनोभिरामम् ॥१५॥  
 स्वभर्तुः पितृपुण्याय, लूणगेश्वरमत्र सः ।  
 विदधे मातृपुण्याय, तथा मदनशङ्करम् ॥१६॥  
 श्रेयसे च स्वनाथस्य, तत्र ब्रह्मपुरीमयम् ।  
 स्वपितुः श्रेयसेऽकार्षीन्-मनीषी वीरमन्दिरम् ॥१७॥

वाडाक-वलभीनाथ-धामग्रामे गिरि(री)न्दके ।  
 गिरीन्द्रतुङ्गं तस्याऽग्रे, तोरणं चैष तेनिवान् ॥१८॥  
 श्रीवीरमन्दिरं मन्त्री, ग्रामे बोहकनामनि ।  
 प्रपामपि कृपालुः श्री-वस्तुपालो विनिर्ममे ॥१९॥  
 गाणपत्यामसौ गाणे-श्वरदेवस्य मण्डपम् ।  
 तोरणं च प्रतोलीं च, वर्पं चाऽथ प्रपां व्यधात् ॥२०॥

॥ इति धबलककर्काधिकारो दशमः ॥

धन्धुक्कके च श्रीवस्तु-पालो (न)ष्टापदेष सः ।  
 अष्टापदे चतुर्विंश-त्यर्हद्विष्वान्यतिष्ठिपत् ॥१॥ ६/२४८  
 अनर्धा(र्ध) पितृ-मातृणां, भवनं विशदाशमना ।  
 उत्तानपट्टं पद्यां च, तत्र कारितवानयम् ॥२॥  
 तथा कोटेश्वरागारे, तोरणं परिधि(र्धि) च सः ।  
 कारयामास मूर्त्ति च, निजामारासनाशमना ॥३॥  
 धन्धुक्कक-हडालीय-प्रान्तरे सप्रपं सरः ।  
 स्वस्वामिसुकृताय श्री-तेजःपालस्तु तेनिवान् ॥४॥ ६/२५४  
 मन्दीकृतकलिर्गुन्दी-ग्रामे दैर्घ्यमुदन्यया ।  
 वस्तुपालो व्यधाद् व्यर्थ, प्रपा-वापीव्य(वि)धानतः ॥५॥ ६/२५५  
 पापसन्तापनिर्वाप-कृते तनुभृतामयम् ।  
 ग्रामे तत्रैव तीर्थेन्दु-बिम्बमेकमतिष्ठिपत् ॥६॥ ६/२४९

॥ इति धन्धुक्ककाधिकारः एकादशः ॥

आसापु(प)ल्ल्यामुदायन-विहारे वीर-शान्तियुक्(ग) ।  
 श्रेयसे स्वाङ्गजस्याऽयं, खत्तकद्वितयं व्यधात् ॥१॥ ८/१५५  
 सान्तूवसत्यामात्मीय-पातुः पुण्योदयाय सः ।  
 वायटीयवसत्यां च, विदधे मूलनायकम् ॥२॥ ८/१५६  
 यशोधवलदेवस्य, गणेशस्य निकेतनम् ।  
 व्यधाद् बडसरग्रामे, नृमणी(णि)ग्रामणीरसौ ॥३॥  
 स्वप्रियाऽनुपमादेव्याः, श्रेयसे मूलनायकम् ।  
 बाला(थारा?)पद्रजिनगारे, तेजःपालो न्यवीविशत् ॥४॥ ८/१५७

तथोमारसिजग्रामे, वस्तुपालः प्रपां व्यधात् ।  
 प्रकटीकृतकारुण्य-पथः पान्थकुटीमपि ॥५॥ ८/६५८  
 सेरीसापाश्चभुवने, खत्तके नेमि-वीरयोः ।  
 मल्लदेव-पूर्णसिंह-पुण्यायाऽयमकारयत् ॥६॥ ८/६५९  
 वीजापुरे च श्रीवीर-मन्दिरे प्रथमाहंतः ।  
 मल्लदेवस्य पुण्याय, स देवकुलिकां व्यधा[त्] ॥७॥ ८/६६०  
 श्रीकुमारविहारेऽसौ, तारङ्गनगमण्डने ।  
 नाभेय-नेमिज(जि)नयो-जनयामास खत्तके ॥८॥ ८/६६१  
 नगरस्य समुद्रत्या(त्य), नगरम्यं जिनालयम् ।  
 भारतीसुनूनाऽनेन, भारतीकीर्तिरुदृता ॥९॥ ८/६६२  
 एतत्प्रशस्तिसुकवे-र्षण्डल्यां वसति व्यधात् ।  
 मोढार्हद्वसतौ मूल-नायकं च न्यवीविशत् ॥१०॥ ८/६६४  
 उद्धार जिनागार-शिवागारैरसौ समम् ।  
 स्वजन्मभूमिकां साध्वा-लयाऽख्यमखिलं पुरम् ॥११॥ ८/६६३  
 श्रीकुमारविहाराऽख्य-मुद्धार जिनालयम् ।  
 असौ नगमिवोत्तुङ्गं, डङ्गरूपाभिधे पुरे ॥१२॥ ८/६६५  
 व्याघ्ररोलाभिधे ग्रामे, पूर्वजानां जिनालयम् ।  
 ध्वजाभुजलतोकृ(त्क्लु)स-ताण्डवं विदधे नवम् ॥१३॥ ८/६६५  
 आसराजसुतः पञ्चा-सराऽख्ये जिनमन्दिरे ।  
 अणहिल्पुरोत्तंसे-ऽतिष्ठिपन्मूलनायकम् ॥१४॥ ८/६६६  
 तेजःपालस्तु निर्माय, मुञ्जालस्वामिनो रथम् ।  
 पूरयामास चौलुक्य-राजधानीमनोरथम् ॥१५॥  
 भीमपल्ल्यां जिनरथं, चक्रे राजेव सम्प्रतिः ।  
 स राजमानः कृतिनां, चक्रे राजेव सम्प्रति ॥१६॥ ८/६६७  
 प्रह्लादनपुरे प्रह्लाद-दनवी(वि)हारमण्डनम् ।  
 एकं मण्डपमेषोऽर्हत्-खत्तके च व्यधादुभे ॥१७॥  
 प्रह्लादनपुरी-चन्द्रा-वतीपुर्योवि(वि)तेन(नि)वान् ।  
 वसती निजपुण्यश्री-कामिनीकुण्डले इव ॥१८॥ ८/६६८

वसन्तः(न्त)स्थानका-उवन्ति-नाशिक्यजिनवेशमसु ।  
 युगं युगं युगं चार्हन्( त् )-खत्तकानामकारयत् ॥१९॥ ८/६६९  
 पुरे सत्यपुरे श्रीमन्महावीरजिनालये ।  
 नाभेय-नेमिनोदैव-कुलिके क्लृप्तवानयम् ॥२०॥  
 जिन( निज )नायक-तत्कान्ता-निजाग्रज-स्वानुज-स्वका मूर्तीः ।  
 केदरेऽपि वसन्तः, पञ्चैष विपञ्चयामास ॥२१॥  
 परःसहस्रा निजकारितेषु, प्रशस्तयस्तेन सुवर्णरूपाः ।  
 आकाशमानद्युतयश्च दण्ड-कुम्भा न्यवेशन्त सुरालयेषु ॥२२॥  
 किं बहु वच्चि विचित्रं, धर्मस्थानानि मन्त्रिणोरनयोः ।  
 गदितुःमत्त(तुमल?)मतुलधिषणो, धिषणोऽपि न जन्मनैकेन ॥२३॥  
 आनाय(य्य) मम्माणनगाद् युगादि-नाथस्य बिम्बं सकर्पदियक्षम् ।  
 सपुण्डरीकं निदधे भविष्यो-द्वाराय शत्रुञ्जयमूर्ध्नि मन्त्री ॥२४॥

[इति बृहत्प्रशस्तौ प्रकीर्णकाधिकारो द्वादशः ॥

सूत्रधारबालसुत-सहलणेन प्रह(श)स्तिरियमुत्कीर्णा ॥]

तेजःपालान्वितो वस्तु-पालोऽबुर्दगिराविह ।  
 चक्रेऽचत्तेश्वरविभो-मण्डपं' चण्डपान्वयी ॥१॥ ८/२२२  
 श्रीमातुः सदने जीर्ण, न्यूनं च यदभूत् पुरा ।  
 उद्धर्तुमिच्छताऽऽत्मानं, तत्सर्वममुनोद्घृतम् ॥२॥ ८/२२३  
 दण्डेशविमलोपजे, तेन तेने जिनौकसि ।  
 श्रेयसे मल्लदेवस्य, मल्लदेवस्य खत्तकम् ॥३॥ ८/२२४  
 कैलासादपि निर्मलं मलयतोऽप्याविभर्वत्सौरभं,  
 हेमाद्रेरपि शृङ्गतुङ्गमभितः शीतं हिमाद्रेरपि ।  
 श्रीमन्नेमिज्जिनेन्द्रमन्दिरमिदं लावण्यसिद्धाभिधा-  
 भाजः स्वाङ्गरुहस्य पुण्यकृतये श्रीतेजपालो व्यधात् ॥४॥ ८/२२५  
 विमलदण्डपतिर्विमलाचला-धिपजिनालयमारचयत् पुरा ।  
 इह गिराव[सकौ तु स]कौतुकं, व्यधित रैवतदैवतमन्दिरम् ॥५॥ ८/२२६  
 प्रद्युम्ना-म्बा-सा(शा)म्बा-वलोकनाऽख्यानि तानि चत्वारि ।  
 इह सानूनि स नूनं, व्यतनोदन्यूनलक्ष्मीकः ॥६॥ ८/२२७

आसीच्चण्डप इत्यमुष्य तनुभूश्छण्डप्रसादस्ततः,  
सोमस्तत्प्रभवोऽश्वराज इति तत्पुत्राः पवित्राशयाः ।  
श्रीमल्लौणिग-मल्लदेवसचिवः श्रीवस्तुपालाभिधा-  
स्तेजःपालसमन्विता जिनमतारामोत्तमनीरदाः ॥७॥ ८/२२८  
श्रीमन्तीश्वरवस्तुपालतनयः श्रीजैत्रसिंहाभिध-  
स्तेजःपालसुतश्च विश्रुतमतिर्लावण्यसिंहाभिधः ।  
एतेषां दश मूर्त्यः करिवधूस्कन्धाधिरूढा इह,  
भ्राजन्ते जिनदर्शनार्थमयतां दिग्नायकानामिव ॥८॥ ८/२२९  
भर्तुः सेवां कर्तुमध्येति मर्त्यैः, साकं लोको भोगिदिक्स्वःपतीनाम् ।  
प्रातः प्रातर्नन्वधस्तिर्यगूर्ध्व-श्रीमद्ग्रावोपात्तवद्विष्वदम्भात् ॥९॥  
महानदीनामिव मण्डपानां, वितानजालेषु नितान्तमस्मिन् ।  
गवेषकाणां पतिता नू(न) जातु, निर्यातुमीष्टे शफरीव दृष्टिः ॥१०॥  
अनुदिनमिह रङ्गक्षोणिरङ्गन्टश्री(स्त्री)-प्रतिकृतिपरिपाटीभङ्गिमाटीकतेऽसौ ।  
स्फटिकपटलराजन्मण्डपक्रोडचूडा-मणिवलयविशालाः(लः) शालभञ्जीसमूहः  
॥११॥

पाताले निखिलेऽपि रो(खे)लति दिवो देशान्तरे दीव्यति,  
क्रोडे क्रीडति भूतलस्य रमते काष्ठासु चाऽष्टास्वपि ।  
आशाराजतनूजकीर्तिरियमित्येतत् समन्तादहो,  
वातान्देलितकेतुहस्तत(च)लनैराक्ष्या(ख्या)ति साख्या(क्षा?)दिव ॥१२॥ ८/२३१  
नागेन्द्रगच्छवनहरि-हरिभद्रमुनीन्द्रगगनपद्मविः ।  
सूरिः प्रतिष्ठितिविधि, विदधे श्रीविजयसेन इह ॥१३॥  
पूर्वोदितेषु चैत्येषु, शेषेश्वपि विशेषवित् ।  
गुरुश्वकार विजय-सेनसूरिः प्रतिष्ठितिम् ॥१४॥  
यो दृग्गोचरताम(मु)पैति समयस्तस्याऽपरान्वेषणे,  
निर्धार्येति कुमारकाविव रवि-ज्योतिष्पती क्रीडतः ।  
रा(रो?)दःकन्दरमन्दिरे व्यवहितौ गीर्वाणभूमीभृतां,  
यावत्तावदयं जयं कलयतु श्रीनेमिनाथालयः ॥१५॥  
अस्तीतः किल मण्डलीति नगरी तत्राऽभवन् विश्रुतः(ताः),  
श्रीमन्तोऽभ्यदेवसूरिगुरु(र)वस्तत्पट्टलक्ष्मीहरिः ।

पूज्यः श्रीहरिभद्रसूरिस(सु)गुरुः षट्कर्कनिष्ठातधी-  
 स्तच्छिष्योऽयमिमां प्रशस्तिमकृत श्रीबालचन्द्रः कविः ॥१६॥  
 देवानन्दमुनीन्दुगच्छगगनालङ्गारशीतद्युतैः(तेः),  
 शिष्यः श्रीकनकप्रभाख्यसुगुरोत्त्रैविद्यचूडामणेः ।  
 वाग्देवीसुतबालचन्द्रसुकवेः प्राप्तप्रतिष्ठः सुधी-  
 रेतस्यां सहकारि कारणमभूत् प्रद्युम्नसूरिः पुनः ॥१७॥

॥ इति श्रीबालचन्द्रसूरिविरचितायां बृहत्प्रशस्तावर्बुदाधिकारस्त्रयोदशः ॥

—X—

## ગૂઢા - પ્રહેલિકા - સમસ્યા - હરિયાલી

— ઉપા. ભુવનચન્દ્ર

ગુજરાતીમાં જેને 'ઉખાણાં', 'કોયડા' કહે છે તેને સંસ્કૃતમાં પ્રહેલિકા કે સમસ્યા કહે છે. જૂની ગુજરાતીમાં ઉખાણા માટે 'ગૂઢા' શબ્દ પણ વપરાતો. કચ્છીમાં આજે પણ 'પિરોલી' શબ્દ પ્રચલિત છે જે 'પ્રહેલિકા'માંથી જ ઊતરી આવ્યો છે. (એક આડવાત : આ પિરોલી શબ્દ કચ્છીભાષાના સંસ્કૃતભાષા સાથેના નિકટ સમ્બંધનો એક પુરાવો છે.) 'પ્રહેલિકા'માં મૂલ શબ્દ છે 'હેલા', જેનો અર્થ થાય છે ક્રીડા, રમત. કોયડા ઉકેલવા એ જરા જુદી-વિશિષ્ટ પ્રકારની રમત છે એ સૂચવવા 'પ્ર' લાગ્યો અને એનું કદ નાનું છે તે સૂચવવા 'ઇક' લગાડવામાં આવ્યો.

આમ, 'પ્રહેલિકા' એટલે બૌદ્ધિક રમત, 'ઉખાણું' 'ઉપાખ્યાન'માંથી ઊતરી આવ્યું છે, જેનો અર્થ હતો 'નાની કથા'. ઉખાણીમાં નાની વાત હોય છે અને તેને સજીવના રૂપે રજૂ કરાય છે. સમસ્યા સંસ્કૃત શબ્દ છે. અસ્ = ફેંકવું; 'સમ્' ઉપરસરી લાગતાં 'સારી રીતે મૂકવું, સરખું કરવું' એવો અર્થ મળે છે. કોયડામાં કોઇક વાત ગૂંચવીને મૂકાય છે, જેને સ્પષ્ટ કરવાની હોય. આમ, 'સમસ્યા' એટલે 'સરખી કરવા લાયક વાત'. 'ગૂઢા' એટલે ગૂઢ-ગુપ્ત રીતે કથન કરનારા દૂહા.

જૂની ગુજરાતીમાં સાંકેતિક રીતે કોઇક વસ્તુનું વર્ણન ગીતરૂપે પણ થવા લાગ્યું, જેના માટે 'હીયાલી' કે 'હરિયાલી' શબ્દ યોજાયો. આ શબ્દ 'હદદ્ય'માંથી આવ્યો હોય એવો અભિગ્રાય શ્રીજયન્ત કોઠારીનો છે. હદદ્યને પ્રસન્ન કરે તે હ્રદયાલી → હરિયાલી → હીયાલી એવી કલ્પના ર્થિ શકે. આવાં ગીતો પણ પુષ્કળ મળે છે. એમાં કોઇક જાણીતી વસ્તુને નવા જ રૂપરંગ સાથે પ્રસ્તુત કરાય છે જેને પરખવામાં માનસિક મથામણ કરવી પડે છે જેમાં ખૂબ મજા પડે છે.

ઉખાણાં, ગૂઢા, સમસ્યા કે પ્રહેલિકાની ગણના આજે લોકસાહિત્યમાં થાય છે. પ્રાચીન કાલમાં તેનો શિષ્ટ સાહિત્યમાં જ સમાવેશ થતો હતો. અનેક પ્રશિષ્ટ કાવ્યગ્રન્થોમાં અને ચરિત્રગ્રન્થોમાં 'સમસ્યા' પ્રકારની રચનાઓ જોવા મળે છે. સંસ્કૃત સુભાષિત સંગ્રહોમાં પ્રહેલિકાસ્વરૂપના અનેક શ્લોકો સચવાયા છે.

હસ્તલિખિત ગ્રન્થભણ્ડારોમાં ફુટકર-પ્રકીર્ણ પત્રોમાં આવી સામગ્રી પુષ્કળ પડી હોય છે. આવાં છૂટાં પાનાંઓમાંથી સંકલન કરીને થોડા ગૂઢા-સમસ્યા-પ્રહેલિકા-હરિયાલી આદિનો એક સંગ્રહ અહીં પ્રસ્તુત છે. વિદ્વાનો અને અભ્યાસીઓને

એ બૌદ્ધિક વિનોદ પૂરો પાડશે.

થોડા અપરિચિત શબ્દોના અર્થ નોંધ્યા છે. કોઈ કોઈ સ્થાને શબ્દો કે પંક્તિઓ ખૂટે છે. ગૂઢાના ઉકેલ તે તે સ્થાને લખેલા હતા, તે નોંધ્યા છે. અમુક સ્થળે અમે શોધીને લખ્યા છે. જ્યાં ઉકેલ નથી મલ્યો ત્યાં પ્રશ્નચિહ્ન મૂક્યું છે. ‘સેવક આગળ...’ અને ‘કહો પંડિત...’ એ બંને હરિયાલી સુપ્રસિદ્ધ છે પણ બન્નેનો ટબો અપ્રસિદ્ધ હશે એમ ધારીને અહીં મૂલ અને ટબો - બન્ને આપ્યા છે.

### કેટલાક શબ્દો

#### ગૂઢા -

બાલી	કન્યા
આપુ	પોતે, જાતે
પરખાણિ	પથરમાં
બાકો	ચુંબન, બકી
છેહત	નુકસાન, દગો, છેડો, અંત
ઉપહરી	ઊંચી, ઊંચાઈએ
ત્રીય	સ્ત્રી
વિવસાયાં	વસવાયાં, કારીગરની જ્ઞાતિ
સજડુ	જટાસહિત
ગંધિયા	ગંધી
પંગુરણ	પાંગરણ, ઢાંકનાર

સૂથ્યણ	સૂથ્યણુ, ઘાઘરો
ખાડેતી	હાંકનાર ?
પાલી	પગપાલી
કવાણ	ધુનુષની કમાન
પુહર	પહોર
સેણા	સ્વજન

#### હરિયાલી -

છ્યલ	છેલછબીલો
પાખડ	વાર
પરણાલાઇ	નીકમાં
માંઢિઝ	ઘેટાએ

\* \* \*

#### ગૂઢા -

પાંચે મૂઠી દશે ધરી, હુઇ બતીસહ નારી,  
કરણ હીઆલી પાઠવી, રાજા ભોજ વિચારિ... ૧ [શિલા]  
ચ્યારિ પુરુષ નઇ સોલહ કુલવંતી, .... .... ....  
ચિહું પુરુષનડ એક જ નામ, કહડ નામ કઇ છાંડડ ગામ... ૨ [અંગુઠડ]  
નારી ભીતરિ નર વસઇ, નર ભીતરિ વસઇ નારિ,  
નર ગોરો સ્ત્રી સાંમલી, કહડ અર્થ વિચારિ... ૩ [આંખ]

फिरइ चडी पणि कहीइ पाली, उत्तम संग करइ सा बाली,  
 आप कूंआरी जग परिणावइ, पंडित एह हीआली भावइ... ४ [कंकोतरी]  
 एक नारी भरतारि मूँकी, देहवन्न सघला सा चूकी,  
 सा जि नारि भरतार न देखइ, जइ जनम भरि देखइ... ५ [सर्पकांचली]  
 एक नारि मुख काजलवन्नी, हीइ परगट नइ बोलीइ छानी,  
 परकारणि आपु छेदावइ, मूरख सरसी गोठ न भावइ... ६ [लेखण]  
 जलि उपन्नी थलइ बसइ, जलि लग्गइ सीदाइ,  
 सा शुं करउ बापडी, जिम अजरामर थाइ... ७ [इंट]  
 थलि उपन्नी जल वसइ, जलचर जीव न खाइ,  
 जीवह कारण बापडी, क्षणि आवइ क्षणि जाइ... ८ [बेडी, नाव]  
 लाखे पुरुषे त्रिणि ज नारी, त्रिहुं मिली इक बेटी जाइ,  
 पुँछडि बांधिड पुरुष नचावइ, सा नारी रूडी भावइ... ९ [वेणी-गोफ]  
 वांकउ चूंकउ बहबहआलउ, सूनउ रूपउ नही परवालउ,  
 गाम नगर सहूँ तिणि सोहइ, कामिणी हाथि लीउ जग मोहइ... १० [सूपडुं]  
 पातलडी नइ वंकमुही, नामइ भणीइ नारि,  
 सुगुणी पुरुषह क्षय करइ, भोज हीआली विचारी... १२ [सोंघणि] [कटार?]  
 दही नही पुण दहीआवनउ, मछ नही पुण जलि उपनउ,  
 चोर नही पुण साही जीलइ, पुत्र नही पुण बाको दीजइ... १३ [शंख]  
 एक पुरुष पखाणि उपन्नउ, तेहनुं भोजन पाणी,  
 राजभवन मइ रमतउ दीठउ, अंतःपुर सह राणी... १४ [चूनउ]  
 एकोतर बेटा जाइआ, बहुतर अछइ पेट,  
 सम करावउ हे सखी, जो पुरुष होइ भेट... १५ [किलि] (?)  
 पगह विण परवति चढइ, मुह विण खड खाये,  
 हुं तुम्ह पूछुं हे सखी, ए कुण सावज जाये ?... १६ [अग्नि]  
 रती रती रतडी, थाइ होइ विरत,  
 स्त्री फाटी पुरुष हुउ, एह असंभम वत्त... १७ [चोखा]  
 जलचर जीव तणीय जनेता, उत्तम मध्यम दीसइ खाता,  
 ब्रह्मा पूणी शंकर झाल, रूप नही पणि दीसह विकराल... १८ [बगाई]

एक पुरुष मइ दीठउ परो, दीहइ सु जीवइ रातिइं मरइ,  
 सूए लाभ जीवत छेहउ, बोलउ राजन ते पुरुष केहउ... १९ [झांपड]  
 नारी एकली असंभम वात, भमइ अ गाम न हाथ न पाग,  
 वाउ पीइ उपहरी चडइ, हीए दोर न हेठइ पडइ... २० [गुंडी][पतंग]  
 चरण नहीं पुण चलइ नयण नवि देखइ सोइ,  
 चढण पंच तस सवल तास गति न लहइ कोइ,  
 पाप फुरत नवि शंक पुन्य तस छेह न आवै,  
 रूपवंत अति चतुर तास गुण केता पावै,  
 यश प्रताप त्रिभुवन प्रगट हेज आणि त्रीय उचरइ,  
 कहउ कंत ते नर कवण अवि (?) प्रचंड सहु फिरइ... २१ [मन]  
 सोवन पाया सोवन ईसा, दो जन बइठा करै जगीसा,  
 फोडइ फोफल खावइ पान, दो जन वच्चै बावीस कान... २२

[रावण-मंदोदरी]

पुरुष एक दोइ नयण वयण सोहइ तसु दाढी,  
 उछव मंगल हर्ष तेहसुं प्रीति जु गाढी,  
 दरदीवाणइ मान जाजुं काजइ सूलहीअइ,  
 ता विण न रहइ मास तास गुण केता कहीयइ,  
 सुभ लक्षण सुंदर सुघट धर्म कर्म मंगल करण,  
 हेज आणि प्रीय उचरइ कहउ त्रीय ए नर कवण... २३ [श्रीफल]  
 चंद्र तणइ आकारि नयण नइ हर्ष करंती,  
 हथिणापुर उपनी अंगनि सेजइ पोढंती,  
 चउ अक्षर तस नाम पुरुष नाम मन मोहंती,  
 पतिक्रता नहीं तेह पंथीजन साथि चलंती,  
 नरनारी मन वल्लही पुन्यवंत सु रमइ अपार,  
 ता विण प्रेम न ऊपजइ कंता लेहु विचार... २४ [अंगाकरी] (?)  
 अठ वयण झगमगइ नयण सोलह तसु लिज्जइ,  
 युगल जीव दोइ हथ चरण दोइ तास कहिज्जइ,  
 रसना पनरह जास तास त्रिभुवन जण पुज्जइ,  
 अहिनिशि ध्यावइ जेह तेह मनवंछित सिज्जइ,

त्रिभुवन जनमन बलहउ, नाम तास मंडण लहयउ,  
 संभलहु नारि पीय उचरइ ए कवन पुरुष उत्तम कहयउ ?... २५ [श्रीपार्श्व]  
 अठ चरण बे पुँछ नयण वस्त्र तास सुणिज्जइ,  
 च्यारि जीव नौ हत्थ श्रृंग दोइ तास कहिज्जइ,  
 चतुरानण तेह तण्णइ नाम ब्रह्मा नवि जाको,  
 भीम पुत्र वइसणु सरिस सोसी आलूण ताको,  
 शारंग पुत्र वाहण कहयउ बहुत लोय सेवइ चरण,  
 संभलहु नारि प्रीय उचरइ इसउ रूपधारी कवण ?... २६ [महादेव]  
 तिखुं नइ तमतमुं, केलि सरीखुं पान,  
 ए हरिआलीनो अर्थ कहइ, तेहनइ आपुं वीरमगाम... [पत्तरवेलानां पान]  
 तिखा नइ तमतमां, सूडा-वरणां जेह,  
 मुझ प्रीड पाटण सीधावीया, मुझ मोकलयो तेह... [पान]  
 उटनी बइंसणि हरणनी फाल,  
 ए अर्थ न कहइ तेनइ ल्यइ खेत्रपाल... [मेडक]  
 रातो घडो कालो बुझारो,  
 ए अर्थ न कहइ, तेहन ल्यइ खेत्रपाल... [चिणोठी]  
 कालो बलद कलोलीउं माथइ सोविन फूल,  
 सोए सहसे मागीउ, धणी न करइ मूल... [आंख]  
 एक नारी छइं चिहु खुणी, चिहुं खूणे छइं चोखंडी,  
 गहिलां लोक रीझइ छइ, विनु कारज सीझइ बइ... [लगननी चोरी]  
 हीआनुं ऊपायुं हीर, वणकर विहोणुं वणिउं चीर,  
 बीबा विहूणी पाडी भाति, को हरियाली केइ जाति ?... [सापनी कांचली]  
 एक नारी छइं झाकझमाली, तेहनइ पासि आवि वनमाली,  
 चोसठि चांपां लाबइं भेटिइं, राजा सरीखां तेह नइ पेटीइं,  
 विवसायां कुल उपनी उभी राजदुआरि,  
 करण हरीआली पाठवइ राजा भोज विचारी... [पालखी]  
 अंब जंब अंबिलीए लगइ, करणे केले द्राख न लगइ;  
 लग लग कहतां किमे न लगइ, मा मा कहतां घणेरु लगइ. [होठ]

स-जडु न शंकरु, सीअ-हरु लंकाहिवइ न होइ,  
 एह हीयाली पंडिआ, विरलउ जाणइ कोई. [कंबल]  
 छ लोयण दह चलण, सत्त कन मुह च्यारि;  
 भोज हीयाली पाठवी, बीसलदेव विचारि. [?]  
 पंचायण कर पंगुरणु, महिलामंडण होइ,  
 हुं तो पूछउं गंधिया, उषध अछइ सोइ. [नख]  
 गले जनोइ पूठे थण, मस्तक उपर कंत,  
 ते बोलंती में सुणी, जोवा गइ ती कंथ... [वीणा]  
 जीवतो बनमां वसे, मूओ आवे गाम,  
 पगे भांगी खोडो थयो, ते कशे न आवे काम... [खाटलो]  
 दो नारी दो वीजणा, परखां कूंपा च्यार,  
 ते हुं आवी मागवा, पाडोसण न करे नाकार... [खाटलो]  
 भोम डशण रीपु बोलियो, छांड चल्यो पिउ मोय,  
 गणपतिवाहन तास भक्ष्य, आणी मेल्या सोय... [कूकडो] ?  
 अगनिकुंडथी ऊपनी, प्रीतम साथे लेइने वहे,  
 वगर पाणीए ढूबकी मारी, चबूर होय ते कहे... [सोय]  
 एक जडी ने श्वेतवरणी, रहे राया शेर राय,  
 चतुर होय तो कहे - ओ जाय ओ जाय... [जाइ]  
 पहिलो जायो बेटडो, पछें जायी माय,  
 बार बरसडो बेटडो, आठ वरसनी माय...

[मा ८ वरसनी बेटो आठ वरसनो ते-ओरमान मा]

पेटण शीतहरण, नही रावण नही राम,  
 चतुर हो तो भावजो, नहीतर रामो राम... [चीर]  
 चलण चोदह नयण दश, शशी पंच जीव च्यार,  
 करण हरियाली पाठवी, राजा भोज विचार... [यवन मङु] ?  
 एक नारि अति सांमली, पांपण माहि वसंत,  
 तो तुम अलजो अति घणो, जोवा अतिहि करंत [आंख]  
 जिहां पवन न संचरे, पंखी न बेसें कोय,  
 ते फल वहिला लावयो, सांचा साजन होय... [मोती]

एक नारि अति जगह पियारी, नहीं पण वेस्या नहीं वणजारी,  
 आपण मरती त्रण जण मारइ, ए काम करइ रंग रहावइ... [नागरवेलनां पान]  
 दही नहि पण दहियावन्नो, मच्छ नहीं पण जल उपन्नो,  
 पूत नहि पण बाका दीजे, बलद नहीं पण नाथी लीजे... [संख]  
 हीयाली तो तेहनें कहीयै, जेहनो हीयौ वलीयौ,  
 एक पुरुष जिमतो दीठौ, सांमे भणइ गलीयौ...  
 जब जाइ तब तीस गज, भर यौवन गज च्यार,  
 बूढापनमें साठि गज, सुरता लेहु विचार... [छांहडी]  
 बालपणें तो बहुत सवायौ, वडौ भयौ कछु काम न आयौ,  
 मैं कहि दीयौ उसका नाम, कहै अरथ कै छांडो गाम... [दीयो]  
 विण पाए डुंगर चढै, विण दांते खड खाय,  
 कहिज्यो पढियां पंडितां, सो कुण जीव कहाय... [अगनि]  
 पढम अक्षर विण मारग हरै, मध्यक्षर विण नभ संचरै,  
 अंताक्षर विण चोपद खाय, क्युं तुम्ह पास नहीं होय राय... [खडग]  
 एक पुरुष प्रगट पवित्र, तास न देखे कोइ,  
 सुंदर कहौ विचार कै, सुखदाइ जग सोइ... [वायरो]  
 एक नारि ताकै मुख साल(त?), सो मैं दीठी पेटै जात,  
 आधो माणस निगले रहै, अर्थ भाव कोइ पंडित कहै [सूथण]  
 डुंगर झरणै घर करै, सरली मूळे धाह,  
 सो नर नयणे नीपजै, तस मुझ साद सुहाय... [मोर]  
 परवत शिखर एक रथ जाइ, खाडेती बैठो भुंय ठाय,  
 अति उच्चक (उच्चक) चालै करि, पग आधो नव जाइ... [कुंभारचक्र]  
 कुण आधार जीवो तणुं, काम वरण कुण खाप,  
 श्रावण धुरि कुण फूलीयै, स्त्री परणी किहा जाइ... [सासरइ जाइ]  
 प्रथम अक्षर विण जग आधारै, मध्यक्षर विण जग संहारे,  
 अंत्य अक्षर विण सगलां दीठौ, एह अंचबो नयणे दीठौ... [काजल]  
 चंचल रुख अनेक फल, फल फल न्यारा नांव,  
 तोडऱ्यां पछी पाकसी, पंडित करो विचार... [कुलाल चक्र]

मारी थी तन मारी थी, कुंवारी थकी सारी थी  
 अबै मारै मुजकुं तो, मोटी बदुं तुजकुं... [हांडी]  
 इक नारि इण नगर मझारे, खाइ मण दोइ च्यार,  
 पग छ ने चाले चिहुं, आंख च्यारि ने देखे बिहुं... [घाणी]  
 एकै उपरि दोइ तल, संकट आइ नारि,  
 करण हीयाली पाठवी, राजा भोज विचारि... [इंदोणी]  
 ऊंटोके है बेसणै, चीतां जेही फाल,  
 अरथ न कहसी इहनुं, ते लेसी पंचा गाल... [मींडक]  
 नामें सुनी रंगे काती, करे गामांतरो न हींडै पाली,  
 खाली पेटै चरै, पंडित पुन्य हीयाली करै... [सोपारी]  
 हीयाली तो तेहने कहीयै, जेहनें हीये हुवे ग्यान,  
 एक पुरुष में जातो दीठो, तेहनें माथै कान... (?)  
 मुखइं पाणी पीवै, पर हथ करै विहार,  
 करण हीयाली पाठवी, राजा भोज विचार... [लेखण]  
 एक नारी नवरंगी चंगी, कहै तसु कूड जाय,  
 पाणी विना तिरंगी दीठी, जग मीठी ते जाय... [जलेबी]  
 एक नगरी नें छै बहु रावला, तिण नगरी में नही वाणीयो,  
 सोइ ज नगर प्राकरे छायो, प्रगट पिण कहीयै जाणीयो... [मंकोडानुं घर]  
 छ चलणा दो लोयणा, तिहुं खंधे सरीर,  
 नगरीमांहि भमत है, दीठो कवण सु वीर... [मंकोडो]  
 अंबर अडै न धर पडै, जननी जने न तास,  
 चंद-सूर देखत मरै, कवण पंखेरु भास... [बादल]  
 एक पुरुष सांवलौ, फरै नव नव वेस,  
 मनि कवण ते जाणीयै, वाचो देस विदेस... [?]  
 एक हीयाली हुं कहुं, सुणि रे भाइ पोपला,  
 एक संखरे तीनफल, गुल-राइ नें कोकला... [छोतरा, दांणा, अमल]  
 जाली जलै न जल में बुडै, तोली टांक न होइ,  
 पूरब पछिम उत्तर हवै, दक्षिणा दिस न होइ... [छांह]

सदल सकोमल सीसहर, लंका धणी न होय,  
 म्हांकै आयो पाहुणो, थांके छै सो ढोय... [सीरख, चादर]  
 बाप न दीन्ही दाइजै, सासू न दीनी खंति,  
 मोडी आइ बापडी, दोइ लै सूतो कंति... [सीरख, चादर]  
 नैन अढार जीव तीन, च्यार भुजा षट् पाय,  
 दिन प्रति समर्या थका, सदा रहै सुहाय.. [?]  
 बाप ज बेटे इको नाम, बेटो फिरे ज गामोगाम,  
 बेटा रै इक बेटी जाइ, सो फिर हुइ बापडी माइ... [आंबा-केरी-गुटली]  
 कागळनि परें कड कड, मद (?) जिम झोला खाय,  
 राजा पूछे पंडीतो, ए कुण जनावर जाय... [वीजळी]  
 आशपाशथी आइ है, लोक के मन भावि है,  
 देखि है पण चखी नहीं है, राम दुहाइ खाइ है... [गामनी खाइ]  
 एक नारि ते जगमां जाणी, पुँछडा हेरे पिइ पाणी,  
 पीती पीती निची जायइ, ठाकठोक पाडोसण खाय... [घटीका यन्त्र]  
 महीपुत्रथी उपनी, तेहना राता दांत,  
 ते नारी नर बांधीयो, जोवा गइ थी कंथ... [इंटबंध कूवो]  
 उत्तम कुलथी उपनी, विशेष वीसमी डाल,  
 लखमीसुं लीला करे, तेहनां नाम सो-हजार. [लाख]  
 हरीयाली ते हल परमाणो, जाणे सघलो लोक,  
 केडमां झाली कूटीइं, तो पइशा आवे रोक... [पींजण]  
 हरीयाली तो तेने कीजे, जेने हीये होइ ज्ञान,  
 एक पंखी में एहवुं दीटुं, जेने पूँछडे च्यार कान... [तीर]  
 नारीथी नर उपनो, नरा उपनी नारी,  
 उ नारी नर मारसी, सुरता कहौ विचारी... [कबाण]  
 एक पुरुष कहै असंभव बात, विण पग चालै दिन राति,  
 अंधारै अजवालो करे, एक वरस में निश्चे मरै... [टीपणो]  
 सूक्कौ लकड हे सखी, मैं फल लागो दिह,  
 चाखै तो जीवे नही, जो जीवे तो निह... [बरछी]

चिहुं नारी नर नीपजै, चिहुं पुरुष नर होइ,  
 सो नर आवै पाधरो, गंज न सकै कोइ... [दिन]  
 गलै जनोइ पूंठि थण, मस्तक उपरि दंत;  
 एह हीयाली पाठवइ, राजा भोज विचार... [वीणा]  
 सूकौ सरवर बहुत जण, कवण न लब्धइ पार,  
 करण हीयाली पाठवइ, राजा भोज विचार... [अरीसो]  
 माता तौ महीयल वसै, पिता वसै आकास,  
 जूना कहौ तौ मोकलां, नवा आसू मास... [मोती]  
 पडी पडी पिण भांगी नहीं, कुटका हुवा दु चार,  
 सौलै हुइ ठीकरी, राजा भोज विचार... [राति]  
 गंगा जाकै सिर वहै, रुङ्डमाल गल मांहि,  
 वाहिण जाको सहल है, माहदेव भी नांहि... [अरहट]  
 आइ आइ सौ को कहइ, गइ न वांछइ कोइ,  
 आव्या हीं दुःख उपजै, गयां ही दुख होय... [आंख आइ]  
 हल हलका भू पतली, वावणहार सुजाण,  
 हाथे वावै मुख लुणै जो छेह्;

वाट जोबुं छुं तेहनी जेम छावीओ मेह... [कागल]  
 इक नारि नवरंगी आइ, तिण नवरंगी बेटी जाइ,  
 इक पुहर थे रखे कोइ, बेटी सो फेर बेटा होइ... (?)  
 सिंधुसुतासुत तास रिपु, तास सामिनि जेह,  
 अन्त्याक्षर विण जे हुए, वेगी करजो तेह. [समुद्र-छीप-मोती-हंस-सारदा-सार]  
 राधापति के कर वसे, पांचु अक्षर एह,  
 आदि अक्षर विण नीपजै, सो नित हमकूं देह. [सु-दरिसण]  
 घट्पद वाहन तासु सुत तस धी वाहन तास,  
 सो निश्चे करी मानज्यो, तेह तुमारे पास. [हंस][जीव]  
 दधिसुत कंठ विलग री(रही?), महीसुत के अणुहार,  
 कश्यपसुत देखे टरै, पंडित कहो विचार. (?)  
 जलसुय तस सुय तास सुय, तस वल्लही म मंडि,  
 पिय अक्खइ धण अगलइ, केइ छंडिस कय छंडि. [वेढि][झगडो?]

रजनीचर रिपु रिपु मयण, अरिजननी उत्पन्न,  
 आज तिको अम घर नहीं, तिणसुं थया कृशंत. [रात-राक्षस-देव-दानव-देवी-  
                   महिषासुर-भेंस-घी, घी नथी तेथी दीवो झांखो थयो छे.]  
 अजा सुत सारिखडो, जा वलहो लहेस,  
 तो दशसिर बंधव लही, जनमेतर न लहेस. [छाली(बकरी)-बोकडो-तेना  
                   जेवो छेल-ते रावण-तेनो बंधव कुंभकर्ण-तेनी प्रिया ऊंघ]  
 धरतीवाहन तास रिपु, तिस माथे जे होय,  
 ते मारे एण सारिखा, कहयो कारज कोय. [धरतीनो वाहन सर्प-तेनो वेरी मोर-  
                   तेना माथे छत्र होय-तेम तुमे अमारे छो-छत्र सरीखा छो.]  
 पाणी पीती दूबली, तरसी माती होय,  
 हुं तुज पूछुं पंडिता, ए काके ही होय... [छास]  
 जल उपनी थल वसी, जल लागइं सुीदाय,  
 बाली मुंको एहने, जिम अजरामर थाय... [इंट]  
 सरोवर पाले होवे जेह, कूँकण [कांठे] निपंजे तेह,  
 बेहु मिलीने एक ज नाम, कहो पंडित केहो गाम... [वनखंडग्राम]  
 हर सुत वाहन वलहो, ता वाहन सुत स्याम,  
 संभारीने सजन्ना, कहेज्यो लेइ नाम...  
 [शंकर-कार्तिकेय-मोर-मेघ-पवन-हनुमान-राम]  
 आंबाथी बे केरी पडी, ते दीठी बे बीजे,  
 दीठी तेणे लीधी नहीं, लीधी पण बे बीजे,  
 लीधी ते दोड्या नहीं, दोड्या पण बे बीजा,  
 दोड्या तेणे खाधी नहीं, खाधी पण एक बीजे,  
 खाधी ते कुटाणो नही, कुटाणो एक बीजो,  
 कुटाणो ते रोयो नहीं, रोया पण बे बीजा.  
 (आंखो ए जोइ, हाथोए लीधी, पग दोड्या, मुखे खाधी, कुटाणो माणस, रोइ  
 बे आंखो)

कायामंडण कवैण ? कवैण रजपिता कहावे ?

वड जोगासण कैवण ? धके गढ कवैण ढहावे ?

नृपद्रव्य को कहाँ नाम ? हुकम कहो कौन परक्खे ?

कहा तंदुल कुण्ठ होत ? कहा सयण हरक्खे ?

आद अरू अंत परहर अखर, ध्यान चरण मङ्ग ध्यावला,

किचलाल कहे मंगलकरण जयो पास जीरावला ।

(श्रीजीरावलाजी) (१. जीव २. राव ३. राजीव (पद्मासन) ४. ? ५. रावला  
६. वजीरा, ७. जीरा (?) ८. वला)

सीतापति-अरि तास रिपु, उणे पाल्यो छे सोय,  
देव मनुष्य में देखता, ऐसा विरला कोय.

(राम-रावण-लक्ष्मण-तेणे जे पाल्युं (शील), एवा बीजा विरला होय)

नररिपु वाहन तास रिपु, रिपु रिपु जे होय,  
तास कटी अनुहारडे, कहीए विरला कोय.

(मनुष्यरिपु यम, तेनुं वाहन भेंसो, तेनो शत्रु वाघ, तेनो रिपु सिंह - तेनी केड  
- एवा विरल होय)

प्रथम अक्षर विण बाल पियारी, मध्य अक्षर विण पेरे नारी;  
अंत अक्षर विण सेणा दीजे, ऐसे नामे सेर सुणीजे. (सादडी)

प्रथम अक्षर विण जग जीवाडे, मध्य अक्षर विण जग संहरे;

अंत अक्षर विण सघले मीठो, ए अचंभो नयणे दीठो. (सारस)

प्रथम अक्षर विण कोइक जीवे, मध्य अक्षर विण महिला छाजे;  
अंत अक्षर विण होत संहरी, एण नामे संसार में प्यारी. (बाजरी)

षट्पद वाहन तास सुत, तसु पुत्री कर जेह;

जोई राखो जुगत सुं, वनरिपु-रिपु सुं तेह.

(भमरो-कमल-ब्रह्मा-सरस्वती-पुस्तक, तेने अग्नि-पाणीथी बचावो)

अथ एक अक्षर उत्तर लिख्यते -

१. वंदे नही क्युं देव-गुरु, विकै न वसु विवेक;  
छोडै ऐठो अन्न क्युं, उत्तर त्रिहूंरो एक. (भाव नही)

२. पूछै किम सवाद नही, दीधै किम फिर दीध;  
दाडिमकण ज्युं पोस्तकण, जुदा नही किण विध. (थर नही)

३. हाथी जनमि किसुं न है, वैद दियै किम पत्थ;  
नर आदर किम ना लहै, उत्तर त्रिहुं इक अत्थ. (जर नही)

४. देशै नीपति क्युं नही, क्युं न थडे लोहार;  
किम वसतां मुङ्हगी विकै, ऊत्तर एक प्रकार. (घण नही)

समस्यापूर्ति –

‘थारी में यूं ठहरात न पारै’ इति समस्या पूर्यते –

१. दूरसौं दूरि मिलै छिनमैं गहि लेत है एक किनारौ,  
भौरसैं खात फैलात चिहुं दिसि वैं कुअरै नहि होत निनारौ,  
एक न ठौर कहौ ठहरात गहौ नहि आवत हाथ अतारौ,  
युं तिस नामैं भमे चित चंचल थालीमें ज्युं ठहरात न पारै.

अन्यश्च –

२. मैं हरवीरज धीरजकारण गोरी कौं प्राण नि हाथैं पियारौ,  
मैं कियो कारितकेय कुमार करुं उपगार सु धानु सुधारौ,  
कासीमें होइगी हांसी हमारी निकारि बन्नात लिपि सिही डारौ,  
त्रिधा त्रिकूट त्रिजाति मैं तार हुं थारीमें युं ठहरात न पारै.

“काकैं कैं दीठे कुटुंब ही दीठौ” इति समस्या –

१. मोहनभागे जलेबीय लद्दूअ घेवर तामैं कहो कहा मीठौ,  
वाद भयो प्रमसी कहै नागर न्याउकुं जंगल जट्ट प्रतीठौ,  
सो कहै बूरै कैं पूर भये सब ताकौ भाई गुड लाल मजीठौ,  
सो गुड दीठौ है अति मीठौ तौ काकैं कैं दीठे कुटुंब ही दीठौ.

अथ ‘मत्सी रोदिति मक्षिका च हसति ध्यायन्ति वामभ्रुवः’ इति व्याससतीदासदत्तं समस्यापदं पूर्यते –

१. श्रीकृष्णोऽम्बुधितश्तुर्दश भृशं रत्नानि निर्वासिया–  
मासाऽनेहसि तत्र सक्तसफरः शुण्डाघटो निःसृतः ।  
स्वस्वभ्रंशवशादपूर्वलभनाद्वातिः (?) प्रतीतः क्रमान्–  
मत्सी रोदिति मक्षिका च हसति ध्यायन्ति वामभ्रुवः ॥
२. राजन्नाजिविधौ त्वया निजरिपुर्व्यापादितस्तच्छ्वरो–  
लात्वोड्डीय जगाम गृध्र उत तद् दृष्टं च नद्यां वहत् ।  
वार्घट्टे किमिति स्त्रियस्तिमियुतं तनिश्वकर्षुस्तदा  
मत्सी रोदिति मक्षिका च हसति ध्यायन्ति वामभ्रुवः ॥

३. वृक्षे क्षौद्रमसंख्यमाक्षिकमिहारुक्षन् समीक्षन् लियो  
द्रागुन्मूल्य सरिद्रयोद्रुममिलद् द्रुत्वामिभंद्रुद्रुतं (?) ।  
पीताब्धिश्च पवौ जलस्थलतयागामज्जताच्चित्ततो (?)  
मत्सी रोदिति मक्षिका च हसति ध्यायन्ति वामभ्रुवः ॥

‘यष्टिरीष्टे न वैणवी’ इति समस्या पूर्यते -

१. नमनं गुणवानेव कुरुते न तु निर्गुणः ।  
गुणं विना नर्ति कर्तुं यष्टिरीष्टे न वैणवी ॥  
२. प्रतिभैव प्रयुक्तिः [स्यात्] खण्डने स्यान्मतिस्तु न ।  
क्षोदितुं हि कुशीव क्षमा यष्टिरीष्टे न वैणवी ॥

‘नवलक्ष्यो जनताक्षिभिर्बिभीः’ इति समस्यापदं श्रीजिनचन्द्रसूरिभट्टारकैः  
प्रदत्तं पञ्चकृत्वः पूरितं-

१. सुषमाभिरनेकसूनृतैः प्रतिभाभिः सुनयैश्च सदगुणैः ।  
जिनचन्द्रतुलां करोति यो नवलक्ष्यो जनताक्षिभिर्बिभीः ॥  
२. प्रतिघस्मयकैतवस्पृहाः करुणान्यत्र च पञ्च तद्विदे ।  
प्रवणो यतिपः परीक्षते त्र वलक्ष्यो जनताक्षिभिर्बिभीः ॥  
३. उपकारपराऽपकारिषु कनकं कामिनिं च वष्टिनो (?) ।  
स भवाब्धिपराङ्मुखः पुमा-नवलक्ष्यो जनताक्षिभिर्बिभीः ॥  
४. कुरुते गुरुगर्हणां यको दृष्टि (ढ?) मुष्टित्वमलं दधाति यः ।  
अभिधाप्यशुभात्र यस्य सः न वलक्ष्यो जनताक्षिभिर्बिभीः ॥  
५. गदतः स्वजनेष्टनाशतो जरसो मृत्युत एव दैवतः ।  
शतशो भयमेवमुद्धह-नवलक्ष्यो जनताक्षिभिर्बिभीः ॥

‘तिलतुष्टतटकोणे कीटिकोष्टं प्रसूता’ इति समस्यापदं पूर्यते-

१. सखि दृशि समपप्तत्कीटिकैकोपभारं  
सुहृदवदत्पक्षमो(?)दस्प्तिः सारयन्तं ।  
अभिमुखमयबिम्बं वीक्ष्य दृक्स्थं तदाहो  
तिलतुष्टतटकोणे कीटिकोष्टं प्रसूता ॥  
२. तिलमिव लघु चितं स्नेहयुक्तप्रदेशे  
निविशति किल हीनाङ्गीव कृष्णातिकृष्णा ।

मयमिव मदनां सा सूतजातं तदित्थं  
तिलतुष्टतटकोणे कीटिकोष्टं प्रसूता ॥

‘विवेकः शाब्दिकेष्वयं’ इति समस्यापदं पूर्यते—

१. उत्तमोऽहं सदा वर्ते मध्यमस्त्वं प्रवर्तसे ।  
परः सामान्य आवाभ्यां विवेकः शाब्दिकेष्वयम् ॥
२. समासः क्रियते तेषां येषामन्वययोग्यता ।  
वासता (?) बहुरूपाणां विवेकः शाब्दिकेष्वयम् ॥
३. सर्वधातुकता नित्यं लकाराणां चतुष्टये ।  
अर्धधातुकता षट्के विवेकः शाब्दिकेष्वयम् ॥

‘समस्या समस्या समस्या समस्या’ इति पदं पूर्यते—

प्रवर्ति(?) विश्वे जिनस्योपदेशो,  
भवार्ब्धं तितीर्षुर्भवेद्यो हि तेन,  
रतिश्वारतिश्वातिनिन्दाऽतिनिद्रा,  
समस्या समस्या समस्या समस्या ॥  
षोडश नयनसरोजा-न्यष्टै मुखपङ्कजानि पादौ द्वौ ।  
पञ्चदश यस्य जिह्वा, जीवद्वयमस्तु वः सिद्ध्यै ॥

[सात फणा पार्श्वनाथ भगवान]

### प्रहेलिका —

किं सपयं अवरोतं ? गामं किं कारणेण धणइङ्गं ?  
सुहडो कीस न गिणइ खगं समरंगणे पडियं ? (करहीनं)  
नारीद्वयं यत्र नरात्मयो हि शृङ्गद्वयं पुच्छयुगं च यत्र ।  
नवाधिकं नेत्रसहस्रयुग्मं दशैव पादा दिशतात् स राज्यम् ॥ (?)  
आद्येन हीना लघुमानरूपा, मध्येन हीना प्रविभासमाना ।  
अन्त्येन हीना कृशदुर्व्वहा स्यात्, संपूर्णनाम्नी भवतां मुदे सा ॥ (भारती)  
चउवयणो नवि बंभो बहुसिलो(सीसो?) नेव राय(व?)णो होई ।  
सरणागयरख्खकरो भीमो नहु होइ जाणेह ॥ (मढ)  
अभूमिजमनाकाशं रसास्वादविवर्जितं ।  
सुलभं रोगनिर्नाशि वद वैद्य किमौषधं ॥ (लङ्घनं)

## हरियाली -

१

एक नरइं बहु पुरुष झालिनइं नारि एक निपाइ  
हाथ पाय नवि दीसइं कहिइं, मा विना बेटी जाइं  
चतुर नर, ते कुण कहिइं नारी... १

चौर-चुनडी-चरणा-चोली नवि पहरइं ते सालु,  
छयल पुरुष देखीनइं मोहइं, एहवि तेह रूपालू... २  
अपासिरइं नवि आवइं कहीइं, देहेरइं जाए हरखइ,  
नरनारिस्युं रंगइं रमती, सहूँ साथइं सरखी... ३

कंठइ वलगी वाहली लागइं, साहिबनइं रीझावइ,  
... ... ... ... ... ... ... ... ... ... ... ... ... ... ... ४

एक दिवसनुं यौवन तेहनुं, पछइं नावइं काम,  
पांच अक्षर छैं स्युंदर तेहना, तेहमां तेहनुं नाम. ५  
कान्तिविजय कवि इणि परिइं बोलइं, सुणज्यो नर नइं नारी,  
ए हरियालीनो अरथ कहै ते, साहिबनि बलिहारी... ६

(फूलनी माला)

२

हाथी दंत समी एक नारि नामाक्षर तिस दोइ,  
दूध-धारि सरिखउ सुत जनमइ मान भखइ सुत सोइ रे... १  
बूजउ पंडित ए हरीआली जोइज्यो हृदइ निहाली,  
करिज्यो ऊतर पाछउ बोली, सुधउ अरथ संभाली रे... २  
नरनारी संयोगिं जाइ, देह विवर्जित बाला,  
मुख पाखइ पंच साखि, विणसे उतपति काला रे. ३  
श्वेतवरणस्यइ नयणे दीठउ, गंध विवर्जित फूल,  
न चढइ देवि न देख्युं भावै, किछुय न पावै मूल रे. ४  
उत्तमि बापइ बेटउ जायउ, बेटइ बाप लजायउ,  
बेटा के गुण लेखि लिखायो, नारी नयण सुहायो रे. ५

पांचे वरणि नवि पंचाली, नागिणि नहि दोइ जिह्वा,  
श्याम वदन मंजारि न होवै, लिहि पंडित निशदीहा.                   बू० ६  
अधिक कषाय धरइ उपजतउ, खाटउ यौवन वेस्यइ,  
वडपण हुइ विशेषइ मीठउ, दीसै देस विदेस्यइ रे.                   बू० ७  
गुणकंत मनि गरब न आणै, छेडयउ छेह न दाखै,  
सब जग की जे लज्जा राखै, मुनि शिवचंद इम भाखइ रे. बू० ८  
(१. पूणी, ३. चुटकी, ४. ?, ५. काजल, ६. लेखण, ७. आंबो, ९. वस्त्र)

## ३

बाई रे में कौतिक दिटुं, काणो डोलो आंजियो ए...	१
बाई० हाथ विछुटो हाथियो ए...	२
”           बोडि[डी] माथें राखडी ए...	३
”           तरस्यो पाणी नवि पीयइ ए...	४
”           फलिओ आंबो कपियो ए...	५
”           सूर्यरें हाथी मारीओ ए...	६
”           बेटे बाप विणासिओ ए...	७
”           विस पीधे हरखीत हुओ ए...	८
”           विण पुरुषें रमणी रमे ए...	९
”           एक नारी परणे घणा ए...	१०
”           गुरुड नाम विष धारीओ ए...	१२
”           गयवर सीह सामो ग[च]ल्यो ए...	१३
”           सायर माढा सवि गल्या ए...	१४
”           एक जणे पांच विणासीया ए...	१५
”           माय मुइ रोईं नहि ए...	१६
”           वयरी घर मांहि रमे ए...	१७
”           नारीइ प्रीतम बांधिओ ए...	१८
”           बांध्यो चोर चोरि करे ए...	१९
”           सुख विण सुखीउ थयो ए...	२०
”           पंथ लही भूलो फरें ए...	२१

## ५

विण सबर्दि वात ज भाखै, जग सघलो ते करि राखै,  
ते नरी लहीइ लाखै रे रे पंडितजी, कहउ विचारी,  
हरियाली अरथ संभारी... रे पंडित... १

इक नारी किणिही न दीठी, मुनिवरनै मनि मति मीठी,  
वसि कीधा विंदक धीठी रे... पं० २

जिंभि करि. किणिहि न चाख्यउ, सबही थइ मीठुं भाख्युं,  
अभिधान जलंतरि राख्युं रे, पं० ३

होवै जिंहा अधिक सनेह, पय-पाणी सारंग-मेह,  
तिंहा मीठुं अति घण केह रे... पं० ४

इक नारी घरि पूजावइ, जीवंती दुख ऊपावै,  
खिण छूटे खिण बंधावे रे... पं० ५

कापी करि कटका सांध्यउ, तसकर ज्युं ताणि बांध्यउ,  
तरुणीतनि ते जै बांध्यउ रे... पं० ६

जातां जण च्यारि कहीजै, चिंहुको इक खोजि लहीजै,  
भोजन कै उपरि दीजै रे पं० ७

ए अरथ अनूपम जाणै, चित्त अंतरि गरव न आणै,  
तेहने शिवचंद वखाणै रे पं० ८

(१. नाडी, २. मुक्ति, ३. झाकल, ४. हसणु, ५. सोगठी, ६. कंचूओ, ७. तंबोल)

## ६

राग : आसाउरी

कहो रे पंडितजी तुम्हे विचारी, रंगीती रलीयाली रे,  
एह हरीयाली हरखे बोली, जोज्यो कोण सुकुमाली रे... क० १

कर्ता कामि दो पुत्र नीपाया, हूया जगमांहि विखाती रे,  
नारी दोइ तिणि नीपाइ, एक जल सेती राती रे... क० २

सुरुपीनि अ जीवइ द्वीपखि, चलण विहूणी चाले रे,  
ते जोवानइ नखर हरखइ, जल-थलि बेहू माले रे... क० ३

एक वसंता महिमा वाधइ, बीजी मान गमावइ रे,  
एक आवइ होइ रंग रेली, अपराधी सवि जावइ रे... क० ४

एह नारी सुं जे नर राता, साह-चोर ते कहीइ रे,  
मेरुलाभ कहि जेहु सुंदरी नइ, छोडइ शिवपुर लहीइ रे... क० ५

[होडी-ननामी]

७

दारे बेठी सूडली तस पांख ज नावे,	
चुंण करवा कारणे, सायरमां जावे...	दारे० १
देह वरण नीली नही, तस पांच छे नीली,	
पांचे इंडा मूकती, सायरमां झीली...	दारे० २
तेह इंडा चांप्यां थका, फोडा पण नवी फूटे,	
एहनी भगती जे करे, तेहना पातक छूटे...	दारे० ३
कवीजन हरखे एम कहे, ए कुण छे सूडी,	
अरथ वीचारी जे कहे, तेहनी मती छे रुडी... दारे० ४	

[कलम]

८

कहो कहो रे पंडित ए हरियाली...

एक अनोपम पुरुष ते कहीइ जे देखी नइ सुख बहु लहीइ... कहो० १
तस मस्तक एक नारी बयठी ते पणि सारंगा मइ रे दीठी, कहो०
कारीगरइ पणि तेह नीपाइ, देखत नयनां बहु सुख पाइ... कहो० २
एक पुरुष जब सबलो रे थावइ, तव ते चिहुं दिसि डील हलावइ, कहो०
सात पांच पुरुष नइ चाकर राखइ, अहनिसि ते पणि मधुरु रे भाखइ... कहो० ३
राती नीली पीली धोली काली, पांचे वरणी अति रढियाली, कहो०
मोहनगारी सहुनइ प्यारी, ए पणि मोटे कामइ धारी... कहो० ४
जेणइ थानक ए नारी रे सोहइ, तिहां सुरनर बहु भूपति मोहइ, कहो०
हर्षविजय गुरुवयण संभाली, प्रीतिविजय कहइ ए हरियाली... कहो० ५

९

अचल सुता पति तसु दिपिइ रे, रिपु धर कंत वखाणि,  
तसु रिपु भज्जा नाम छइ रे, तसु प्रथमाक्षर जाणि,

गुणियण सेवउ सुहगुरु पाय, तसु नामइं दुरित पलाइ  
जसु जपतां शिवसुख थाइ... १

तसु सह नामइं जे अछइ रे, तासु तणउ मल्हार,  
तसु नामइं मन ऊल्हसइ रे, पामउ हरख अपार... गुणि० २  
वनरिपु तसु रिपु तेहनी रे, धूय तणा तनु बान,  
महियलि महिमा महमहइ रे, द्यइ इंद्रादिक मान... गुणि० ३  
समुद्र सुता सुत तनु तुलइ रे, निर्मल दीपइ जासु,  
अखंड कीरति छइ तेहनी, कीधउ अतिहि प्रकास...गुणि० ४  
जासु नाम प्रगटउ जगिइ रे, हेलिइ जीतउ मार,  
संजम सिरि सहजइं वरी रे, तरिया भव संसार... गुणि० ५  
सहगुरु दीठइ उपजइ रे, हरि सिरि जिणि सोभंति,  
ए गूढारथ तिणि कीयउ रे, पंडित जण बूझंति... गुणि० ६  
ऋषि हापराज इम वीनवइ रे, ए गूढारथ गीत,  
साधु तेय सूधउ सदा रे, अवर बइसइ चीति... गुणि० ७

## १०

### परमार्थ तत्त्व हीयाली

सेवक आगइ साहिब नाचइ वहइ गंग जल खारी;  
गर्दभ साटइ गइवर वेचिउ इ अचरिज मोहि ता(भा)री,  
चतुर नर, बूझइ एह हियाली, जिम ऊतर दे संभाली [आंचली] १  
हिवइ भव्यजीव तणइं कारिणि हितोपदेश-शिष्या(क्षा) वचन दीजइ छइ.  
कर्मरूप सेवकनइं आगलि जीवरूपीओ राजा नाचइ छइ. जिनवाणी श्री सिद्धांत  
रूप गंगाजलनइं आपणी मतिइं जूठां अर्थ कहतउ खारु करइ. प्रमाद रूपीओ  
गर्दभ, तेहनइं साटइ संयम रूपीओ मत्त गइवर वेचिओ. जीव प्रमादनइ वस्य  
पडिओ चारित्र पाली न सकइ.

मांकड कइ वसि जोगी नाचिउ, मारिउ सीह सीयालइ;  
इक चीटीयइ परबत ढाहिउ, अचरिज इणि कलिकालइ... चतुर०२  
चतुर नर, हीयाली नउ अर्थ ए जांणिवउ... मन रूप मांकड कइ वसि  
जोगी असंयमी नाचिउ. शीलरूपीउ सिंघ काम सीयालइं मारिउ. तृष्णा रूपिणी

चीटीयइं संतोष पर्वत पाडिउ, जीव तृष्णातुर थकउ संसार मांहि महत्व गमावइ.

सुरतरु साखइं काग बइठउ, विषधर गरुड विदार[इ]

कस्तूरी परणालइ वाही, लसण भरिउ भंडारइ... चतुर० ३

जिनशासन रूप कल्पवृक्षइं कुगुरु, काग बइठउ. क्रोध ज्ञाननइं नसाडइं. समतारूप कस्तूरी गमावी नइं असत्य वचननउ [ल्हसणनउ] संचय करइ. ए जीवनउं स्वभाव जाणिवउं.

अंब-आक फल इक तरु लागा, हंस-काग इक मालइ;

मींढइ नाहर लातइं मारिउ, अचरिज इणि कलिकालइ... चतुर० ४

ए शरीर केडइं सुखदुख दोनूँ फल लागा वहइ छइ. ए जीवनइं पुण्य पाप बे साथिइं छइ. अभिमान रूप मींढइ विवेक नाहर पग[गि] ठेलिओ. अति मानथी विवेक जाइ ए वात जाणिवी!

माछरकइ मुखि मङ्गल मायउ, राजा घरिघरि हीडइ;

एक थंभ पांचइ गज बांध्या, राणी होइ कण खांडइ... चतुर० ५

मिथ्यात्व रूप माछरइ सम्यक् रूप हाथी गलियो जाणिवउ ए वात जाणिवी. जीवराजा नवीनवी योनि मांहि भमइ, एक शरीरइ पंचइं इंद्री लागा वहइ छइ, अविरतिराणी ब्रतनी खंडना करइ.

आठ नारि मिलि एक सुत जायउ, बेटइ बाप बढायउ,

चोर वसिउ मंदिर महिं आई, घरथी साह कढायउ... चतुर० ६

आठ कर्मकी प्रसूतिइं संसार रूपी पुत्र प्रगट कीधउ छइ. कपट बेटइ मोह पिता वधायउं. विषय चोर काया मंदिर मांहि वसिउ, साहस रूपी साह घटमांहिथी कढायउ.

एक आगि सगलइ जल पीवइ, वेस्या धूंघट काढइ,

कुलवंती कुल लाज तिजी करि, घरि घरि बारइ हींढइ... चतुर० ७

लोभ रूप आगि सगली वस्तुनइं सोषइ छइ. माया वेस्या मिष्ट वचन रूप धूंघट करइं, कपटी मीठौ बोलइ. सर्वविरति रूप सती कुलवंती स्त्री आपणी लाज छांडी अने असंयम विकारइ प्रवर्तइ.

ए परमारथ ग्यान सुणी करि, आत्मध्यान सुध्यावउ,  
विनयसागर मुनिवर उपदेसइं, धरमइं निज मति लावउ... चतुर० ८

ए वात श्रीजिणवरइं पंचम आरानी स्थिति जाणी सिद्धांत मांहि कही,  
एहवउ जाणी उत्तम प्राणी सुभमति आणी मन-वचन-कायाइं करी जिनधर्म  
करिवउ. ए खरतरगच्छे श्रीसुमतिकलश मुनि शिष्य पंडित विनयसागर  
मुनिवर कृत उपदेश सांभलीयइं धर्म सुंणीयइ.

## ११

कहयो पंडित ते कुण नारी, वीस वरसनी अवधि विचारी.. कहयो० १

जाणइ ते चेतना नारी, ते नारी कुण ?

वीस वरसनी अवधि दीजइं छइं, ते माटइं...

दो पिताइं तेह निपाइ, संघ चतुरविधि मनमां आइ... कहयो० २

ए बे पिताइं निपाई छइ नारी, ते नारी चतुरविधि संघना मनमां आवि.  
कीडिइं एक हाथि जायो, हाथी साहमो ससलो धायो... कहयो० ३

निगोद मांहे जे अव्यक्त क्षर्योपशम ते कीडि तेहथी व्यवहार ज्ञान होइ ते  
हाथि जाणवो. तेहथी साहमो जीव अज्ञानि थाय ते ससला सरिखो कर्म ते सांमो  
थयो.

विण दीवें अजूवालूं थाय, कीडीना दरमांहे कुंजर जाय... कहयो० ४

दीवा विना अजूआलू थाय ते चेतन जाणवो. तेह मोहग्रस्त थाइं ति वरि  
कीडीदर जे निगोद, ते आंहि हाथि सरखो ज्ञानवंत पणि जाणिइं (जाइ).

वरसै आगि नइ पाणी दिवें, कायर सुभट तणा मद जीर्णै... कहयो० ५

ते चेतनाने अधिकारे अग्नि सरिखों कर्म वरसै त्यारें पाणी सरिखो खिमावंत  
थाइं ते दिपइ. विषय-कषायना भयथी संसारी कांतार [कातर] थाइं ते मोह  
रूप सुभटनइं जीपइं.

तिण बेटीइं बाप निपायो, तेणे तास जमाइ जायो... कहयो० ६

तेह चेतनरूप बेटीइं उपयोग रूप बाप निपायों छइं. तेणे बापइं उपयोगात्मा

रूप जमाई जायो.

मेह वरसंतो बहू रज ऊडें. लोह तरङ्ग ने तरणुं बूडे... कहयो० ७

स्लेहरूप मेह वरसंतां कर्म रूप रज, ते उड़इं. लोह सरिखो ज्ञानवंत बलिष्ठ होय ते तरें, तरणा सरिखो विषय लालची जे छे ते बूड़इं.

तिल फरें ने घाणी पिलाइं, घरटी दाणें करिय दलाइं... कहयो० ८

तिल सरिखो कर्म करइं तेहने समुदायें प्रमाद, घाणि सरीखी चेतना पीलाइ. ते कर्म छइ [रूपि]दाणे करी चेतना रूप घरटी प्रमादी थाइ ते दलीइं.

बीज फले नें शाखा उगइ, सरोवर आगले समुद्र न पूगाइं... कहयो० ९

बीज ते बोध बीज फलाइं, क्रिया करें ते शाखा, ने ज्ञानरहितने दुःख पालवइ ज्ञानसरोवर आगल संसारसमुद्र पणि न पूगाइं.

पंक झरे ने सरवर जामे, भर्में माणस तिहाँ घणे विसामे... कहयो० १०

ते चेतना करो थइनइ ते झरे तीवारें आत्मा रूप सरोवर जामे. तिहाँ घणे प्रमाद रूप विसामें ने मनुष्य संसारमां भर्मे. चरित्र रूप वेरें चाले ते न भमइ. प्रवहण उपर सायर चालें, हरण तरें बल डुंगर हाले... कहयो० ११

प्रमादि ते प्रवहण सरिखो आत्मा तेहनें हेंठें घालिनइं उपर संसार समुद्र चालइ छइं. हरिण सरिखा कर्मने बले डुंगर सरिखो आत्मा अस्थिर थाय. एहवउं जाण.

एहनो अर्थ विचारी कहयो, नहितर कोई गरव म धरयो... कहयो० १२

प्राणिइं ते चेतन नामइ जीवनी बुद्धि करवी, प्रमाद न करवो, नहितर मन माहि गर्व कोइ न धरस्यो.

श्री नयविजय विबुध ने सीसें, कहि हरीयाली मनह जगीसें... कहयो० १३

श्री नयविजय पन्न्यासने चेले पोताना मनने हरखे एह हरियाली कहि. ए हरीआली जे नर कहेसैं वाचक जस कहे ते सुख लहसे... कहयो० १४

जे एह हरियालीनो अर्थ जाणस्यें अथवा कहस्यइ ते जसविजय पाठक कहै छै जे ते अनंत सुख लहस्यइ. पंडित होय ते एह हरिआली अर्थ विचारी नें कहेवा.

## શ્રીમાનસાગર-વિરચિત આષાઢાભૂતિ સતઢાલ્યિયો

— સં. પ્રા. અનિલા દલાલ

કવિ માનસાગર એ તપાગચ્છના ગુજરાતી જૈન સાધુ-કવિ છે. તપાગચ્છપતિ શ્રીવિજયપ્રભસૂરિ → વિજયરત્નસૂરિ → શ્રીજીતસાગર → માનસાગર — આ તેમની ગુરુપરમ્પરા, આ કૃતિની છેલ્લી ઢાળની અન્તિમ બે કડીઓના આધારે જાણી શકાય છે.

મધ્યકાલીન ગુજરાતી સાહિત્ય કોશ-૧માં ઉપલબ્ધ નોંધ પ્રમાણે આ કવિએ વિક્રમસેન ચોપાઈ (ઇ. ૧૬૬૮), સુરપતિ ચોપાઈ (૧૬૭૩), સાત ઢાળની પ્રસ્તુત રચના તથા અષાઢભૂતિ ચોપાઈ રાસ (ઇ. ૧૬૭૪, ૧૬૮૦), આર્દ્રકુમાર ન્રષિ સર્જાય (૧૬૭૫), કાન્હડ કઠિયારા ચોપાઈ-રાસ (૧૬૯૨), સિંહલકુમાર ચોપાઈ (૧૬૯૨), સુભદ્રાસતી ચોઢાલ્યિયું (૧૭૦૩) ઇત્યાદિ અનેક કૃતિઓ રચી છે. તેમનો સત્તાકાળ સત્તરમી સદીનો ઉત્તરાર્ધ છે.

અષાઢાભૂતિ નામક સાધુપુરુષને કેન્દ્રમાં રાખીને કવિએ બે રચનાઓ રચી છે. ૧. અષાઢાભૂતિ સતઢાલ્યિયો. ૨. અષાઢભૂતિ ચોપાઈ. બને કૃતિઓ મહદંશે સમાન જણાય છે. થોડા થોડા પરિવર્તનને બાદ કરતાં લગભગ એક જ રચના હોય તેમ લાગે છે.

પ્રસ્તુત સમ્પાદનમાં ‘સતઢાલ્યિયો’ને મુખ્ય રાખીને વાચના તૈયાર કરેલ છે. તેની પ્રતિ સં. ૧૮૯૫માં લખાઈ હોવાનું પુષ્પિકાથી જણાય છે. અષાઢભૂતિ ચોપાઇના પાઠભેદો તેમ જ કેટલાક શબ્દોના અર્થ ટિપ્પણીમાં આપેલ છે. ચોપાઇને પ્રતિમાં ‘ચોંપી’ તરીકે લખેલ છે.

આ બને કૃતિની હસ્તપ્રતો કોબાના શ્રીકैલાસસાગરસૂરિ જ્ઞાનમન્દિરના ગ્રન્થસઙ્ગ્રહમાંથી પ્રાપ્ત થઈ છે. ‘સતઢાલ્યિયો’ની પ્રત્યક્ષમાંક ૩૯૬૬૧, તથા ચોપાઈ (ચોંપી) પ્રત્યક્ષમાંક ૧૬૯૪૨ - એ ક્રમે ત્યાંના સંગ્રહમાં બે પ્રતો નોંધાયેલી છે. બને પ્રતિઓની ઝેરોક્ષ નકલ આપવા માટે તે જ્ઞાનમન્દિરના કાર્યવાહકોનો આભાર માનું છું.

## आषाढभूति सतढाळियो

सासण-नायक-सुखकरु वांदु वीर जिणंद		
सेवकने सुरतर(रु)समो पुरण परमाणंद...	१	
वचन-सुधारस वरसती समरी सरसति माय		
वाणी वरवाणी दीयो सेवकने सुख थाय...	२	
‘से मुख श्रीजिन उपदिसे दान सीयल तप भाव		
धर्ममुल एही ज धुरा भव-सायरकी नाव...	३	
भाव-विशेषे भविक जन अहमे अधिक सुजाण,		
भाव-सहित तप-जप करे तेह ‘च्छे निर्वाण...	४	
भाव विना जिन भगत सी भाव विनां सी दीख़		
भाव विना भणवो किसो भाव विना सी सीख...	५	
इण परि भावे भावना जिम आषाढमुनीस		
कर्म ‘मयल खेरुं करी केवल’ लह्यो जगीस...	६	

## दाल अलवेल्यारी

दाहिण भरतमांहे भलो रे लाल, पूर्व दिस प्रधान सुखकारी रे  
राजगृही रलीयामणी रे लाल, इंद्रपुरी उपमान... सु०  
राजगृही पुर सूंदरुं रे लाल... १

सोहे चोरासी चोहटा रे लाल, वापी कुप आराम सु०  
अहनिस सेवे देवता रे लाल, जिहां रहिवाने विश्रांम सु० २ रा०  
लोक वसे सुखीया सहु रे लाल, धन करी धनद समान सु०  
ले लाहो लिखमी तणो लाल, दे षट दर्शण दान सु० ३ रा०  
आरीहंत आंण वहे सदा रे लाल, श्रावक कुल सिणगार सु०  
धरम-धुरंधर्मे धुरा लाल, छे द्वादस वरत धार सु० ४ रा०  
नालंदेपाडे वसे रे लाल, जिहां श्रावकनी जोड सु०  
सें मुख वीर प्रसंसीया रे लाल, साढीबार कुल कोड सु० ५ रा०

१. स्वयं । २. पांमें चो । ३. दीक्षा । ४. मेल खंखेरीने । ५. केवलज्ञान ।

पर्वत पांचे पाखती रे लाल, विभार विपुल गिर जांण सु०  
 उदय सोवन रतनेंगीरी रे लाल, नाम मिसा वखांण० सु० ६ रा०  
 सालभद्र धनो तिहां रे लाल, एकादस गणधार... सु०  
 कर अणसण अराधनां रे लाल, पोहता मुक्ति मझार सु० ७ रा०  
 लांबी हाथ छियाल छे रे लाल, परँवर पोसाल सु०  
 चवदे चोमासा कीया रे लाल, वीर जिणंद दयाल सु० ८ रा०  
 पहिली ढाल पुरी थई रे लाल, अँलविल्या केरी जात सु०  
 मानसागर कहे सांभलो रे लाल, नगर तणो अवदात सु० ९ रा०

### दुहा

गाम नगर पुर विहरता निरमम निरअहंकार  
 पांचसयां मुनी परवर्या धर्मरूची अणगार... १  
 समोसर्या तिण अवसरे राजगृही उद्यान  
 तास सीस आषाढमुनी लबधि गुणे प्रधान... २  
 छठ तणो छें पारणो लेई सतगुर आदेस०  
 चारित्रियो १० वहरण चल्यो नगरे कीध प्रवेश... ३

### दाल - २

“(वादल चिह्निंदिस उनम्या सखी... ए देशी)  
 मुनीवर वहिरण पांगुर्या सखी लेई सतगुर आदेस  
 छठ तणो छें पारणो सखी नगरे कीध प्रवेस रे...  
 मुनीवर नवजोवन वेस रे सोहे सीर लुंचित केस रे  
 चित्त लोभ नही लवलेस रे मनमोहनगारो साधुजी... १  
 कांधे लाखीणी लोवडी सखी हाथ अमोलक डांग  
 मेयंगेलनी परे मलपतो सखी निरमल गंग तरंग रे  
 सोहे तन केसर रंग रे रूपे करी जेम अनंग रे  
 छोड्यो प्रमदानो संग रे मनमोहनगारो साधुजी... २

६. नाम जिहां तिहां खांण - चो. । ७. प्रवर वीर पोसाल - चो. । ८. अलबेला०  
 चो. । ९. त्रीजो दुहो चो. प्रतमां नथी. । १०. वहोरवा - आहार लेवा । ११. वादल दह  
 दिस उसयां सखी - चो. । १२. कामळी अथवा पछेडी । १३. मयगल - हाथी ।

भमर तणी परे बहु भमे सखी ले मुनी सुध आहार  
 सूर तपे सिर आकरो सखी पिंड झरे जलधार रे  
 रिष उपसमनो भंडार रे जिण जितो है विषयविकार रे  
 अति पंच माहावरत धार रे... मनमोहन... ३

पुज पधारे वहरवा सखी नटुई केरे गेह  
 धर्मलाभ दीयो<sup>१४</sup> धु सखी चितमें चमकी तेह रे  
 आओ मुनीवर अम गेह रे हर्षे करी पुरित देह रे  
 मोदक द्ये धरि ससनेह रे... मनमोहन... ४

मोदक ले मुनीवर चल्यो सखी वलि चिंते चित मझार  
 अे मोदक मुझ गुर भणी सखी कीधो अेह विचार रे  
 मुनि लबधि तणो भण्डार रे कीधो तिण रूप उदार रे  
 वलि आयो दुजी वार रे... मनमोहन... ५

ती मोदक लेई चल्यो सखी वलि चिंते मुनिराय  
 ए विद्यागुर कारणे सखी थिवर रूप वलि थाय रे  
 अति गलत कीधी काय रे लडथडता मुंके पाय रे  
 तीजी वेला तिहां जाय रे... मनमोहन... ६

डोसो दुखीयो दुबलो सखी देख थई दीलगीर  
 वेहरावे करुणा करी सखी जाय रह्यो एक तीर रे  
 चिंते मुनी वडिवीर रे ईणमे लघु सीषनो सि(सी)र रे  
 गुर पास भणे जीम कीर रे... मनमोहन... ७

कुबो डुबो वांमणो सखी स्यांम वरण करहि(ही)ण  
 कांणी कोची आंखडी सखी गीड रह्या लयलीण रे  
 दंतुर अति काचा खीण रे तिण रूप रच्यो अति दीण रे  
 बोले मुख वयण प्रवीण रे... मनमोहन... ८

चोथी वेला आवियो सखी नटई तणे आगार  
 पडिलाभे प्रेमे करी सखी मोदक सुध आहार रे  
 लेई मुनीवर कीध विहार रे लब्धि कीया भेख अपार रे  
 नटवे दीठा तिण वार रे... मनमोहन... ९

१४. दीनों सत्वरें - चो. । १५. बोलंतो मुख प्रवीण रे - चो. ।

ऊंचा महलथी उतर्या सखी नट बांद्या मुनी पाय  
जे जोईये ते लीजीये सखी जे कछु आवे दाय रे  
नटवो निज मंदिर जाय रे पुत्रीनें कहें समझाय रे  
सुरतर सम अे रिषराय रे.... मनमोहन... १०

जो नटवो हुवे आपणो सखी तो भरीये धनकूप  
राज लोक रीझे बहु रीझे भलाभला भूप रे  
मुनीवर तो अकल सरूप रे लबधि करि नवनवा रूप रे  
ओहने मोहो करी चुंप रे... मनमोहन... ११

बीजी ढालमे ढलकतो सखी मीठो राग मल्हार  
मानसागर कहें सांभलो सखी सांभलतां सुखकार रे  
हिवे नटुइ करे विचार रे मुनी चिंत्यामण अनुंसार रे  
पांमीजे पुन प्रकार रे... मनमोहन... १२

### दुहा

बिजे दिवसे वहरवा आयो उणही ज गेह  
नटुई दीठो नेण भर्ति पड़िलाभे धरि नेह... १

आगे उथी आयनें जाणे चमकी वीज  
मुनीवर मन “सांसे पड्यो ओह रूप की रीझ... २  
रूपे रंभा सारखी इंद्राणी अणुंहार  
के पदमण पातालकी, घडी आप करतार... ३

### ढाल - ३

(वांभणडी जग मोहियो... ए देशी)

भुवनसुंदरी जयसुंदरी अति सोहे रे मन मोहे रे मुनीवर को जांण के  
कर जोडी आगल रही मुख बोले रे, अति मीठी वांण के  
मुनीवर मोह्यो माननी... (आंकणी) १

ज्यां सीर सोहे राखडी सिर गुंथ्यो रे गुंथ्यो अति चंग के  
वेणी भुजंगम सांमली विच करतो रे तिहां राज अनंग के...

मुनिवर मोहयो माननी.... २

टीको नीको निलँवटे मुख सोहे रे पुनमनो चंद के  
दंत जीसा दाडिमकुली जिहां सोहे रे अमृतनो कंद के

मुनिवर मोहयो माननी.... ३

आंख कमलनी पांखडी गलि सोहे रे एकावली हार के  
नाके नकवेसर भण्यो कुंच सोहे रे श्रीफल अनुकार के

मुनिवर मोहयो माननी.... ४

बांहे सोहे बहिरखा कर सोहे रे सोवननी चुड के  
कांने कुंडल कनकमे इँण वाते रे मर्ति जांणो कुड के

मुनिवर मोहयो माननी.... ५

कटमेखल सोहँणी तटे कट चरणां रे पहर्या अति चंग के,  
पाये घुघर घमघमे मुलकंती रे करे नव नव रंग के

मुनिवर मोहयो माननी.... ६

नयण वयण नारी तणा हिवे छुटा रे करवाने चोट के  
मुनिवर मृगतन भेदीयो अति दीधी रे नयणांकी दोट<sup>१९</sup> के

मुनिवर मोहयो माननी.... ७

नयण वयण सर सारिखा अति नांख्या रे तिहां भर भर मुंठ के  
भेदालक तन भेदीयो जाई लागो रे ते न रुके उठ के

मुनिवर मोहयो माननी.... ८

भुवनसुंदरी जयसुंदरी समझावे रे ऐ तीजी ढाल के  
मांन कहे समज्या<sup>२०</sup> सहु धन्यासी रे रागे सुविशाल के

मुनिवर मोहयो माननी.... ९

१९. निलाड - ललाट । २०. सोणी - चो. । २१. चोट - चो. ।

२२. सङ्घ्या - चो. ।

### दुहा

कर जोडी वीनती करे सुंण ससनेहा साध  
 भटके घर घर भीखने कहोनी कुंण फल लाध... १  
 कुंण अपराधी अहवो आ दीधी <sup>२३</sup>तुम सीख  
 ईण वेलां तुं अेकलो मांगे घर घर भींख... २  
 ईसी सीख किम मानीअे लही मानव अवतार  
 जिण अे भोग न भोगव्या किण लेखे अवतार... ३

### ढाल - ४

(राम चंद के बाग चंपो मोरी रहो री... ए देशी)

सुण ससनेहा संत, कांमण अर्ज करे री  
 थे गीरूवा गुणवंत, घर घर कांय फीरे री... १  
 आ कीण दीधी हे सीख, जोवन दीख<sup>२४</sup> ग्रही री  
 घर घर मांगे भीख, कहो काहा सीध लही री... २  
 किण धूतारे धूत, चितडो धूत लीयो री  
 लेई कीयो अवधूत, फिर फिटकार दीयो री... ३  
 फिरो उभारणे पाव, सुंण आषाढ मुंणी रे  
 सूक लुखो खाय, किहां सीध सूणी री... ४  
 पहरी मेला वेस, सोच न कछुय कीयो री  
 मसतक लुंच्या केस, देही दुख दीयो री... ५  
<sup>२५</sup>लुल लुल लागुं पाय, साहिब कहो करो री  
 थे सहुने सुखदाय, हमसुं प्रीत वरो री... ६  
 परणो जोवन वेस, नरभव सफल करो री  
<sup>२६</sup>सूथे भीनां केस, कांमण चित धरो री... ७  
 सुंण ससनेहा सांमि, भेख परहो तजो री  
 थे अम्ह आत्मराम, मंदिर सेझ सझो री... ८

२३. कुण चो. | २४. दीक्षा | २५. अलवाणे - चो. | अडवाणा पग।

२६. तिहां काह सिन्ध सुणिरी - चो. | २७. लळी लळी | २८. सुधे - चो. |

फूल बिछाई सेझ़, नव नव भांति भली री	
करि हरणांखी हेज, पूरो चित रली री...	९
तुम्ह मिलवा हम कोड, मंदिर आय बसो री	
जासी जोवन दोड, बेठा हाथ घसो री...	१०
ईम नटुइ तो जपंत <sup>१९</sup> , आई चरण लगी री	
नेह निजर निरखंत, देखत प्रीत जगी री...	११
कांमणने समझाय, मुनीवर वात कही री	
गुरकुं पुछुं जाई, आवीस तुरंत सही री...	१२
धसमस चाल्यो वेग, कांमण चित वसी री	
छांड्यो मन संवेग, आश्रम आयो रीसी री...	१३
मांनसागर कविराय, चोथी ढाल भणी री	
वनिता के वस थाय, हिवे आषाढ मुँणी री...	१४

### दुहा

वाट जोवे मुनीवर तणी सतगुर नयण निहाल,	
हिवे आषाढ मुनीसरूं तिहां आव्यो ततकाल...	१
वछ तुम्हे असुरां आविया माथे ढलीयो सूर	
सतगुर शिषनें पूछीयो बोले शिष करूर...	२
घर घर भिख्या मांगवी घणुं संताया भीख <sup>२०</sup>	
सीर सूर्य पगला तपे उपर बले तुम्ह सीख...	३
ओघो ऐ मुहपती ओह तमारो भेख	
खम्या न जावे खिणखिणें खारा वयण विशेष...	४
बोल बांह <sup>२१</sup> दे आवियो कर नटुइ संकेत,	
रह्यो न जावे भोग विण नटुइ बांध्यो हेत...	५
हमकुं तुम्ह आदेस द्यो नटुइधरमे जाय,	
भोग भलेरा भोगवां <sup>२२</sup> हमकुं थया उछाह...	६

२९. ईम नटवी जलपंत - चो. । ३०. घणो संताप्यो भीक्षु - चो. ।

३१. वायदे - चो. । ३२. मुज मन चितउछाहे - चो. ।

### ढाल - ५

(रूपीयारी अधटांक तमाखु मोलवे हो लाल तमाखु... ऐ देशी)

पधणे सतगुर शीख सुणो शीष वावला<sup>३३</sup> हो लाल... सुणो शीष...  
 पररमणीके काज थया किम आकुला हो लाल... थया किम...  
 पंचमाहावृत धार ईसो तुम किम घटे हो लाल... ईसो तुम  
 जाप जपे तुम्ह नाम लियां पातक कटे रे लाल... लि. १  
 रतन चित्यामण हाथ <sup>३४</sup>द्विखद कहो कुण ग्रहे रे लाल... द्वि.  
 गेंवर<sup>३५</sup> घुमेवार गधो कुण संग्रहे रे लाल... ग.  
 सुरतरु आंगण तोडि बंबुल न वावीये रे लाल... ब.  
 अंब फल्यो असमान <sup>३६</sup>आक नहुं वावीये रे लाल... आ. २  
 वर छांडीजे प्राण हुंतासनमे वली रे लाल... हुं.  
 चारित रतन म छांडि न करि नारी रली रे लाल... म.  
 तप कर काया सोसइं इंद्री वस कीजीये हो लाल... ई.  
 संजम विधसूं पाल <sup>३७</sup>बोहत जस लीजीये हो लाल... ब. ३  
 न गमे सतगुर सीख कहें सिष <sup>३८</sup>गुर भणी हो लाल... क.  
 मुज मन आहिज मोज गृहे ब्रसवा तणी हो लाल... गृ.  
 हमकुं द्यो आदेश कहे सीष' वलीवली हो लाल... क.  
 जिण कुल मदरा मांस टाली रहिज्यो रली हो लाल... र. ४  
 देखीस मदरामांस भखण करतां सही हो लाल... भ.  
<sup>३९</sup>ऐ हम गुरकी कार तिहां रहवो नही हो लाल... ति.  
 हिवे आषाढ मुण्ठीद आयो नटवा घरे हो लाल... आ.  
 भुवनसुंदरी जयसुंदरी बिंहु उच्छव करे हो लाल... बि. ५  
 जो मदरा नें मांस तणो टालो करो रे लाल... त.  
 तो हम तुम घर वास बोल मांनो खरो हो लाल... बो.  
 दोनां मांनी वात बोल निश्चे करी हो... बो.  
 जो तुम्ह लोपांकार साहिब जाज्यो फिरी हो... सा. ६

३३. व्याकुल । ३४. दृष्टद - पत्थर । ३५. गयवर - चो. ।

३६. आक कुं कुण ग्रहे रे लाल - चो. । ३७. बहु तप जस - चो. ।

३८. शिष्य वलवली रे लाल - चो. । ३९. चो. मां आ पंकि नथी ।

परणावी निज तात भुवन जय सुंदरी हो लाल... भ.  
भोगवे भोग रसाल के मन सुधे करी हो लाल... भ.  
हास विनोद विलास विविध सुख मांनतो हो लाल... वि.  
मांनव भव अवतार सफल करि जांणतो हो लाल... स. ७  
एक दिवस आषाढ चल्यो नृपति सभा हो लाल... च.  
तेडो आयो दुत सुकन हुवा ४०सुभा हो लाल... सु.  
लई सामग्री साथ नाटक करवा भणी हो लाल... ना.  
प्रमदा पुठे छाक पीये मदरा तणी हो लाल... पी.  
नाटक जीपी आषाढ आयो घर आपणे हो लाभ... आ.  
राव लही सुपसाव बहु जय जय भणे हो लाल... ब.  
दीठी वनिता वेस विकराल<sup>४१</sup> मद छाकणी हो लाल... म.  
थी(ची)र रहित पडी भुंमि जाणे करी डाक्फणी हो लाल... जा. ९  
मुल सैंभव न जाय जतन बहुला करे हो लाल... ज.  
स्वाननी वांकी पुऱ्ह सरल कहो कुण करे हो लाल... स.  
४३टाल न जावे कोडि ओषध जो कीजीये हो लाल... ओ.  
काग न होवे स्वेत साँबण बहु दीजीये हो लाल... सा. १०  
छांडी संजम वेस ईसी नारी वरी हो लाल... ई.  
४५ईण लोपी मोहिकार जाति अहेनी बुरी हो लाल... जा.  
पांचमी ढाल रसाल विसाल घणुं कही हो लाल... घ.  
मानसागर आषाढ घरे रहसी नही हो लाल... घ. ११

### दुहा

खरी सीख दीधी हुंती पण कांमण लोपीकार  
हिवे रहिवो जुगतो नही निश्चे ने विवहार... १  
विकल रूप नारी पडी मुंकी चाल्यो जांम  
छाक गई मदिरा तणी नारी लाजी तांम... २

४०. सुभ भला - चो. । ४१. विकल - चो. । ४२. स्वभाव ।  
४३. माथानी टाल । ४४. साबु । ४५. चो. मां आ पंक्ति नथी.

कंता क्रोध न कीजीये अबला भाखे आंम  
कीड़ीसु<sup>४६</sup> कटकी कीसी थे अम आतमराम      ३  
॥५८लो झालि ऊभी रही जाय सखी भरतार  
ओ लाखीणो लाडलो कब मेले करतार<sup>४८</sup>      ४  
प्रीत करी परणी हुंती अब किम दीजे छोड  
॥५९कतवारीका सूत जिम जिहां तूटे तिहां जोड...      ४

### ढाल - ६

(नथ गई रे मेरी नथ गई... ए देशी)

प्रीत लगी रे तोसुं प्रीत लगी, प्रीत लगी रे केसरीया कंत  
कहें मृगनयणी सुंणि गुणवंत, तोसुं प्रीत लगी...      १  
प्रीतकी रीत न जांणे कोय जो जांणे जांकुं वीती<sup>५०</sup> होय... तोसुं  
अेकरसुं पीउ आंगण ॥५आव लालन मोरो विरह गमाव... तोसुं  
तुं मुज प्रीतम प्राण आधार तुज विण सूनो सयल संसार... तोसुं २  
तु पिहर तुं सासंर जांण तुं परमेसर तुं रहमाण... तोसुं  
बलतो कहे आषाढ मुनीस मे मन केरी पुरि जगीस... तोसुं      ३  
मे निज गुरकुं दीधी पुठ कहत कहावत आयो उठ... तोसुं  
अब हुं लेसुं संजम भार मे नीज गुरकी लोपी हे कार... तोसुं ४  
हुं अपराधी कठन कठोर विमुख थयो गुरजीको चोर... तोसुं  
में कीधी चारित्रनी हांण नवि कीधी<sup>५२</sup> निज गुरकी कांण... तोसुं ५  
गुर दीवो गुर प्रतिख देव हिवे जाय करसुं गुरकी सेव... तोसुं  
कोप तजो नणदीरा वीर कांमणसूं काई तोडो हीर<sup>५३</sup>... तोसुं      ६  
कहो रे अमने कोण आधार थे तो मुको छो निराधार... तोसुं  
मुनीवर जंपे सुंण हे नार सात दिवस रहसुं घरबार... तोसुं ७  
मेलव द्युं तुझ धननी कोडि पछें नमेसुं गुर बे कर जोडि�... तोसुं  
छठी ढाले अर्थ सुचंग, मानसागर प्रमदा पीउ संग... तोसुं ८

४६. कीड़ी उपर कटक। ४७. पालव। ४८. कब मील सी कीरतार - चो। ।

४९. कतवारीरा तार ज्युं - चो। । ५०. कुलवंती होइ - चो। ।

५१. अेकवार प्रीयु अम घर आव - चो। ५२. राखी - चो। । ५३. सीर - चो। ।

## दुहा

लेई सजाई सब चल्यो भूप पास रिषराज  
नाटक भरत संगीत रस जूगति देखाउं आज... १  
कुमर सजाया पांचसे आरीसे आवास  
विण ताली मृदंग धूनी रागबंध द्ये रास... २  
लबधि करि लोका बिचे आणे नव नव रूप  
“देखी अचंती आषाढमे रीझ्यो चितमे भूप... ३

## ढाल - ७

(हारे लाल वांवणायो वींझणो चुनडी'नी... ऐ देशी)

“रीध करी चक्रवर्तीनी, तिहां “भर्त थयो रिष आप रे लाल  
षटखंड आंण मनावतो हिवे मांड्यो नव नव व्याप रे लाल... १  
धन धन आषाढ मुनीससूं हिवे मांड्यो नाटक जाण रे लाल  
भर्त तणां अहिनांणसुं जिण पाप्यो केवल नाण रे लाल... धन... २  
गज रथ घोडा पायका वले अंतेवर परवार रे लाल  
बतीस सहस नरेससू लबधे करी कीध तयार रे लाल... धन... ३  
भूषण अंग वणावीया रचना<sup>५४</sup> वलि रूपकुमार रे लाल  
भुवन आरिसामे रच्या तिंहा नाटकनां धोंकार रे लाल... धन... ४  
नांहण-मंडप नरपती बेठा करी भूषण दूर रे लाल  
अेक आंगुली रही मुंद्रिका तिहो सोभा अधिक सनूर रे लाल.. धन.. ५  
काया दीसे कारमी परसोभा सोभित तेह रे लाल  
आभरणे कर सोंभती विण भूषण गंदी<sup>५५</sup> देह रे लाल... धन... ६  
अस्थि रुधिर मांस सुक्रनो सिंभ श्लेषम बहुला आंम रे लाल  
अंतर गति आलोचतां मलमुत्र तणो ऐ ठाम रे लाल... धन... ७  
भर्त तणी परे भावनां भावतां लह्हो केवलनाण रे लाल  
कुमर तीके प्रतिबुझीया केवली थया तिण अर्वंसांण रे लाल... धन... ८

५४. देख अचुंबो आषाढीनो रंज्यो चित्रमे भूप - चो. ।

५५. रुथ - चो. । ५६. भरथ - चो. । भरत । ५७. रचिया - चो. ।

५८. मंद्री - चो. । ५९. तिणवार - चो. ।

आयो सासण देवता तिण वेस दीयो रिषराय रे लाल  
 भविक कमल प्रतिबोधता उपदेस दीयो तिण वाय रे लाल... धन... ९  
 अनुक्रमे चारित्र पालने साधु मुगति पोहंता जांण रे लाल,  
 धन्य आषाढ मुनीससू ६० जेहनी लोक वदे सुभ वांण रे लाल... धन... १०  
 ईण परि भावनां भावीये जीम भावी आषाढ मुनिंद रे लाल,  
 मुगति तणां सुख जे लहे गुण गावे सुरनर वृद रे लाल... धन... ११  
 ६१ श्रीगछपति गुरराजीयो श्रीविजयप्रभुसूरिंद रे लाल  
 तसू पट तेज दिवाकरु श्रीविजयरतन ६२ मुनिंद रे लाल... धन... १२  
 ६३ तसु गछ महिमा सोभाकरु, श्रीजयसागर उवझाय रे लाल  
 ६४ जीतसागर गणि सेवके, कवि मानसागर गुण गाय रे लाल.. धन.. १३  
 सतरेसे त्रीसे समे श्रीनगर भेंरुंदे जाण रे लाल  
 सातमी ढाल सोहामणी ६५ कवि मानसागर सुभ वांण रे लाल... धन.. १४

इतिश्री आषाढभूतिनो सतढालीयो संपूर्णम्. संवत १८९५  
 वर्षे चैत सुदि ६ लि. (रतनचुं....)

\* ; \* \*

६०. ज्यांरी लोकमें सोभा अपार रे लाल - चो.
६१. श्रीतपगच्छपति राजियो - चो. । ६२. सुरिंद - चो. ।
६३. तस गछमाहें सोभता - चो. । ६४. तस शिष्य जीतसागर मुनि - चो. ।
६५. वांचतां कोड कल्याण रे लाल - चो. ।

तत्त्वबोधप्रवेशिका - ३

## वेदों का अपौरुषेयत्व

- मुनि त्रैलोक्यमण्डनविजय

यद्यपि भारतीय दर्शनधारा के साड़ख्य-योग, न्याय-वैशेषिक तथा मीमांसा और वेदान्त ये सभी प्रस्थान वेद के चरम प्रामाण्य को स्वीकार करते हैं, तथापि इनमें वेद के पौरुषेयत्व (-पुरुषकर्तृकत्व) तथा अपौरुषेयत्व को लेकर मतभेद है। वेद के रचनाकार के रूप में किसी व्यक्ति का स्वीकार वेद का पौरुषेयत्व है। इससे विपरीत वेद के रचनाकार के रूप में किसी व्यक्ति को न मानना अपौरुषेयत्व है।

वेद किसी प्राकृत पुरुष की रचना नहीं है, यह तथ्य सभी वैदिक प्रस्थानों में समान रूप से माना गया है। न्याय-वैशेषिक वेद को ईश्वर के वचन के रूप में मानकर ही उसके सर्वोपरि प्रामाण्य को स्वीकार करते हैं। इस सिद्धान्त में वेद का प्रामाण्य अभिमत होने पर भी उसका प्रामाण्य ईश्वरप्रणीतत्व पर ही अवलम्बित होने से तत्त्वतः ईश्वर का प्रामाण्य वेद से अधिक सिद्ध होता है।

साड़ख्य-योग दर्शन में वेद शब्दरूप है। शब्द तन्मात्रा है, यह अहङ्कार से उत्पन्न होता है। अतः इस मत में वेद को जन्य-अनित्य मानने पर भी किसी पुरुष की रचना न होने से अपौरुषेय माने गए हैं।

मीमांसा के पूर्वमीमांसा तथा उत्तरमीमांसा (वेदान्त) सम्प्रदाय यद्यपि समान रूप से वेद को अपौरुषेय मानते हैं, तथापि दोनों की वेदविषयक मान्यता में अन्तर है। वेदान्त का अद्वैतवादी प्रस्थान “ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या” के सिद्धान्त के आधार पर ब्रह्मभिन्न वेद को ब्रह्म का विवर्त ही मानता है, मतलब कि वेद उत्पन्न होने से अनित्य ही है। जब कि पूर्वमीमांसा दर्शन में वेद को सर्वथा कारणरहित मानकर उनकी नित्यता स्वीकृत की गई है।

वेदों को पौरुषेय माननेवाले न्याय-वैशेषिकों एवं बौद्ध-जैन जैसे अवैदिकों के द्वारा वेदों के अपौरुषेयत्वपक्ष का प्रबल खण्डन किया गया

है। सन्मतितर्क की तत्त्वबोधविधायिनी वृत्ति में प्रारम्भ में प्रामाण्यवाद की चर्चा करने के बाद वेदों के अपौरुषेयत्व पक्ष की कड़ी समालोचना की गई है। इस चर्चा में पूर्वपक्षी मीमांसक वेद के अपौरुषेयत्व का पक्षधर है, जब कि जैनमत की ओर से उत्तरपक्ष के रूप में वेदों का पौरुषेयत्व सिद्ध किया गया है।

इस चर्चा का अवलोकन करने से पूर्व यह समझना जरूरी है कि मीमांसकों ने वेद को अपौरुषेय गिनना क्यों जरूरी समझा। मीमांसादर्शन की समग्र प्रक्रिया मूलतः वेदवाक्यों पर अवलम्बित है। अतः वेदों को सर्वथा प्रमाणभूत निरूपित करना उसके लिए अनिवार्य था। यह प्रमाणभूतता तभी सम्भवित थी कि जब वेदों को पूर्णतः निर्दोष सिद्ध किया जाय। दूसरी ओर मीमांसकों की दृष्टि में समूचे विश्व में त्रिकाल में भी न तो कोई पुरुष सर्वथा निर्दोष हो सकता है और नहीं कोई कृति भी, जो पुरुषजन्य हो वह, दोषमुक्त रह सकती है। वह भी इसलिए कि जब पुरुष दोषयुक्त हो तो उसकी रचना में भी उन दोषों की वजह से दुष्टा आए यह बिलकुल स्वाभाविक बात है। इस समस्या से बचने के लिए मीमांसकों ने वेद को किसी पुरुषविशेष की रचना न मानकर अपौरुषेय ही स्वीकार किया।

यद्यपि न्याय-वैशेषिक दर्शनकारों ने भी वेदों को किसी प्राकृत पुरुष की रचना न मानकर सर्वज्ञ ईश्वर के वचनों के रूप में ही उसका प्रामाण्य स्वीकृत किया है। तथापि मीमांसादर्शन अनीश्वरवादी होने से उसमें वेदप्रणेता के रूप में ईश्वर का स्वीकार कर्त्ता सम्भवित नहीं है। वह तो कोई भी पुरुष सर्वज्ञ हो सकता है व उस सर्वज्ञ के वचन स्वयं प्रमाणभूत हो सकते हैं इस बात का ही कड़ा प्रतीकार करता है। और तब तो वेद सर्वज्ञप्रणीत हो यह बात सम्भवित ही नहीं हो सकती। तात्पर्यतः मीमांसकों ने वेदों को नित्य, अनुत्पत्तिशील, शाश्वत एवं स्वयं-प्रमाणभूत घोषित किये हैं।

मीमांसकों का स्वतः प्रामाण्य का सिद्धान्त यहीं फलित होता है। वेदों में जो प्रामाण्य उत्पन्न होता है वह ईश्वरप्रणीत होने की वजह से है और उस प्रामाण्य का ग्रहण भी ईश्वरप्रणीतत्व के सापेक्ष रूप में होता है यह परतः प्रामाण्यवादी वैदिकों का पक्ष है। इसके विरुद्ध स्वतः प्रामाण्य के पक्षधर

मीमांसकों का कहना है कि जब वेद किसी की रचना है ही नहीं, चाहे वह ईश्वर हो या अन्य कोई प्राकृत पुरुष, तो उसमें प्रामाण्य किसी की वजह से है यह कहना गलत ही होगा । वेद प्रमाणभूत है तो वह इसलिए कि उन्हें किसीने बनाया नहीं है, वे अपौरुषेय हैं । वे दोषयुक्त पुरुष की रचनास्वरूप नहीं हैं यही उनका निर्दुष्टत्व है । उनमें जो प्रामाण्य मौजूद है वह स्वयं उपस्थित है, नित्य है । उस प्रामाण्य का ग्रहण - वेद वाक्यों से जन्य बोध में प्रमाणभूतता का ज्ञान भी स्वयं होता है, उसे अन्य किसी भी ज्ञान की अपेक्षा है ही नहीं, वह निरपेक्ष है । ईश्वर के वचनरूप में वेदों का प्रामाण्य स्वीकारने का मतलब यही होगा कि हम ईश्वर को वेद से भी ज्यादा महत्त्व दे रहे हैं, जब कि वेद ही सर्वोपरि प्रमाण हैं, उनसे उपर कोई है ही नहीं । वास्तव में जब ईश्वर नाम का कोई व्यक्ति ही नहीं है, तो उसको वेदों का प्रणेता मानना व उसकी वजह से वेदों को प्रमाणभूत समझना कैसे सम्भव है ? ।

इस दृष्टि से देखें तो मीमांसादर्शन के वेदों का अपौरुषेयत्व एवं स्वतः प्रामाण्य - यह दोनों सिद्धान्त एकदूसरे पर अवलम्बित हैं । शब्द का नित्यत्व भी इसके पीछे पीछे ही चला आया है ।

इतनी प्रासङ्गिक चर्चा के बाद अब हम सन्मतिरक्त की तत्त्वबोध-विधायिनी वृत्ति में इस विषय पर जो चर्चा हुई है उसका सार देखेंगे -

**मीमांसक** - किसी वाक्य में प्रामाण्य न हो तो वैसा उसमें रहे दोष के कारण हो सकता है, दोष न रहने पर वाक्य स्वतः प्रमाणभूत होता है । अब दोष का विरह गुण होने पर ही हो ऐसा कोई नियम तो नहीं है, क्योंकि वाक्य को अपौरुषेय मानने पर भी दोषविरह का पूर्ण सम्भव है । वस्तुतः पुरुषमात्र अज्ञानादि दोषों से युक्त ही होता है । अतः उसके द्वारा रचित कृतिओं में उन दोषों से प्रेरित दुष्टता-अप्रमाणभूतता अनायास ही चली आती है । यदि किसी वाक्यविशेष को सर्वथा प्रमाणभूत हम गिनना चाहे, तो यह तभी सम्भवित है कि हम उसे निर्दृष्ट समझे । और इसके लिए उस वाक्य को अपौरुषेय मानना जरूरी हो जाता है । यही वजह है कि हम वेदों को - जिन्हें सर्वथा प्रमाणभूत गिनना चाहिए उसे - अपौरुषेय स्वीकृत करते हैं ।

**उत्तरपक्ष —** यह सब आप जो कह रहे हैं उससे तो यही प्रतीत होता है कि वेद में जो दोषाभाव आप मान रहे हैं वह वक्ता के अभाव की वजह से ही है, उसका अन्य कोई विकल्प ही नहीं ऐसा सिद्ध करने की आपने ठान ली है। मगर जरा यह तो सोचिए कि वेद में जिन प्रामाण्यपोषक गुणों का आप स्वीकार कर रहे हैं वे वहाँ कहाँ से आए?। यदि वक्ता के अभाव में निराश्रय ऐसे दोषों का असद्भाव वेद में हो जाता है, तो उसी वजह से निराश्रय ऐसे गुणों का सद्भाव वहाँ क्यों बना रहता है?। दोषों का उद्भव वक्ता के अधीन है, और गुणों का सद्भाव तो स्वयंस्फूर्त है यह तो दोमुँही बात हुई ना?

वास्तव में वेदों में जो प्रामाण्य के जनक गुण हैं वे ही प्रामाण्य के अपवादक दोषों का निराकरण करते हैं और वे गुण वक्ता के अधीन ही हैं। गुणवान् वक्ता के द्वारा रचे जाने के कारण ही किसी कृति में गुण-सम्पन्नता एवं तज्जन्य निर्दुष्टता आती है। वेदों का कोई रचयिता ही यदि नहीं होगा, तब तो वेद में न तो दोष रहेंगे, न ही गुण रहेंगे। वेद प्रमां-अप्रमा दोनों कोटि से विनिर्मुक्त एक विलक्षण कृति ही बना रहेगा। तब उसे सर्वोपरि प्रमाण के रूप में स्वीकार करना तो एक मजाक ही गिनी जाएगी।

**मीमांसक —** आपकी बात से तो यह सिद्ध होता है कि वेदों में प्रामाण्य का जनक जो दोषाभाव है, वह तत्रस्थ गुणों की वजह से है, और वे गुण गुणवान् वक्ता के द्वारा रचे जाने के कारण ही हो सकते हैं। अतः वेद को पुरुषजन्य कृति ही समझना चाहिए। पर हमारी सोच में आप जिन गुणों की बात कर रहे हैं, वे गुण दोषाभाव का ही नामान्तर है, कोई अलग चीज नहीं। जैसे कि 'यथार्थ-प्ररूपकत्व' नामक गुण को लें, तो यह 'अयथार्थप्ररूपकत्व' नामक दोष का अभाव ही है, और क्या है?। और जब 'गुण' नाम से जिसकी पहचान हो सके ऐसी कोई चीज ही नहीं है, तो उसकी उत्पत्तिहेतु गुणवान् पुरुष की खोज में निकलना कहाँ तक उचित गिना जाएगा?

हाँ, वेदों में जो निर्दुष्टता है, उसकी वजह जरूर सोचनी चाहिए।

वेदों का रचयिता कोई पुरुष यदि होता, तब तो उनकी प्रामाणिकता उस पुरुष पर निर्भर होती। और ऐसा कोई पुरुष हो नहीं सकता कि जो दोषमुक्त हो, जिसका वचन सर्वथा प्रमाणभूत हो, यह तो हम पहेले ही कह चूके हैं। अतः वेद को निर्दुष्ट-प्रमाणभूत मानने के लिए उसे अपौरुषेय ही समझना चाहिए।

**उत्तरपक्ष —** आप इसी बात को अलग ढंग से सोचिए। वेदवाक्य यदि अपौरुषेय हैं तो भी वे अपने विषयभूत अर्थों का स्वतः ज्ञान उत्पन्न करने का व्यापार नहीं कर सकते। क्योंकि यदि वे स्वतः ज्ञान उत्पन्न कर सकते तब तो वे नित्य होने से ज्ञानोत्पत्ति सतत होती रहनी चाहिए, परन्तु ऐसा तो नहीं होता। इससे यह सूचित होता है कि वेदवाक्य स्वयं ज्ञानोत्पत्ति-व्यापार में संलग्न नहीं होता, अपितु पुरुषों के द्वारा अभिव्यक्त ऐसे अर्थप्रतिपादक जो संकेत, उससे जन्य जो अर्थबोधसंस्कार, उसकी सहायता से प्रेरणावाक्य अपने विषय की प्रतीति को उत्पन्न करता है। इसका मतलब यह हुआ कि शब्दों का किस अर्थ के साथ वाच्य-वाचकभाव सम्बन्ध है इस सङ्केत को अध्यापक पुरुष प्रगट करते हैं। जो लोग इस सङ्केत को जानते हैं, उनके 'इस शब्द से यह अर्थ समझना चाहिए' ऐसे संस्कार रूढ हो जाते हैं, तब उन्हें वेदवाक्य पढ़कर अर्थबोध होता है। इस प्रकार वेदवाक्य नित्य हो, अपौरुषेय भी, तब भी उनके अर्थ को जानने के लिए पुरुष की अनिवार्य आवश्यकता है।

अब आपके मत से तो सभी पुरुष रागादि दोषों से व्याकुल ही होते हैं, इसलिए उनके द्वारा प्रयुक्त सङ्केतों से जो संस्कार रूढ होंगे वे भी अयथार्थ ही होंगे। पुरुषप्रयुक्त सङ्केत यथार्थ होते हैं, लेकिन उनके वचन अयथार्थ होते हैं, ऐसा स्वीकार करना नामुमकिन है। नतीजा यह निकला कि वेद को स्वतः प्रमाणभूत व अपौरुषेय मानने पर भी सङ्केतकारक पुरुषों में दोष होने से पुरुषसङ्केत से उत्पन्न वेदज्ञान तो अप्रामाणिक ही सिद्ध होगा। इस प्रकार वेदवाक्यों को अपौरुषेय मानना व्यर्थ परिश्रम ही हुआ।

सङ्क्षेप में कहें तो अर्थ समझने के लिए पुरुष की अपेक्षा रहती ही है। और पुरुषमात्र सदोष होने के कारण वेदवाक्यजन्य ज्ञान में अप्रामाण्य आ पड़ता है। तो वेदों की प्रामाणिकता अक्षण्ण रखने के लिए उन्हें

अपौरुषेय मानकर भी क्या लाभ होता है ? ।

और वैसे भी वेद के अपौरुषेयत्व को सिद्ध करे ऐसी कोई दलील भी आपके पास नहीं है ।

**मीमांसक** — ना जी, हमारे पास इसकी सिद्धि के लिए बहुत सारे तर्क हैं —

१. अन्य बौद्धादि आगमों में, हम और आप — दोनों को रचयिता पुरुष के अभाव का ज्ञान नहीं है, इसलिए उन आगमों को हम पौरुषेय समझ सकते हैं । जबकि वेद में आपको रचयिता पुरुष के अभाव का ज्ञान नहीं होने पर भी हमें तो वह ज्ञान है ही । यह दोनों में विशेष अन्तर है । इसलिए वेद को हम अपौरुषेय गिनते हैं ।
२. वेद नित्य हैं, उनकी सत्ता अनादिकालीन है — इस बात को भी हम वेदरचयिता पुरुष के अभावज्ञान की उत्थापक समझ सकते हैं ।
३. वर्तमानकाल जैसे वेदकर्ता से शून्य है, उस तरह अतीत और अनागत काल भी वेदकर्ता से शून्य ही होने चाहिए — इस अनुमान से भी वेद को अपौरुषेय सिद्ध कर सकते हैं ।
४. वेद पौरुषेय हैं, उनका कर्ता कोई पुरुषविशेष हैं — ऐसा उल्लेख भी वेद में नहीं है ।
५. वेद में ऐसे अर्थ दिखाये हैं जो अतीन्द्रिय हैं, यह बात भी उनकी अपौरुषेयता की ही पोषक है ।

**उत्तरपक्ष** — गहराई से सोचने पर अपौरुषेयत्व की सिद्धिहेतु आपके द्वारा प्रस्तुत ये सभी तर्क मिथ्या प्रतीत होते हैं —

- १-२. आपको वेद में रचयिता पुरुष के अभाव का जो ज्ञान है, वह वास्तव में अभाव है इस हेतु से नहीं हुआ है, किन्तु साङ्केतिक है । यानी आपको अपनी परम्परा के प्रति भक्ति से यह वासना बन गई है कि वेद में कर्ता पुरुष का अभाव है व वे नित्य हैं । वास्तव में मात्र ऐसी पारम्परिक वासना के बल पर हम कुछ भी सिद्ध नहीं कर सकते । क्योंकि हर वादी को अपने माने हुए सिद्धान्तों पर ऐसी भक्तिजन्य

पारम्परिक वासना होती ही है। यदि हम उसको ही प्रमाणभूत मानने लगेंगे तो आपके मत से प्रतिकूल हो ऐसी बहुत सारी बातें सिद्ध होने की आपत्ति आएगी।

३. वेद से इतर बौद्धादि आगमों का भी वर्तमानकाल तो कर्तृशून्य ही देखा जाता है। इसलिए समान हेतु से अन्य आगम में भी अतीतानागतकालीन कर्तृशून्यता सिद्ध होने की आपत्ति आएगी। फलतः, वे आगम भी अपौरुषेय सिद्ध होंगे, और उन्हें भी प्रमाणभूत गिनने की आपको आपत्ति आएगी। इससे बचने के लिए आपको उक्त अनुमान छोड़ना ही होगा।
४. ‘वेद पौरुषेय हैं’ ऐसा कोई वेदवचन यदि नहीं है, तो ‘वेद अपौरुषेय हैं’ ऐसा वेदवचन है क्या? यह भी उल्लेखनीय है कि आप वेद में भी जो विधिवाक्य हैं केवल उन्हीं को यमाण मानते हैं, अनुवादप्रक वेदवाक्यों को प्रमाण नहीं मानते। यदि उनको भी प्रमाण मान ले तब तो वेद पौरुषेय सिद्ध होंगे। जैसे कि – वेदकर्ता के सूचक अनेक वचन उपलब्ध होते हैं –
  - \* हिरण्यगर्भः समवर्तताऽग्ने ।
  - \* तस्यैव चैतानि निःश्वसितानि ।
  - \* याज्ञवल्क्य इति होवाच ।
 ऐसे वेदवाक्यों से हिरण्यगर्भ, याज्ञवल्क्य आदि ऋषिमुनिओं की वेदकर्तृता स्पष्टतः सूचित होती है।
५. अतीन्द्रिय पदार्थों का प्रतिपादन तो अन्य आगमों में भी है, तो भी उनको आप अपौरुषेय नहीं मानते। तो वेदों में ही अतीन्द्रिय अर्थों के प्रतिपादन से उनको अपौरुषेय मानने में विनिगमक क्या है? अन्य वादी अतीन्द्रिय अर्थों के द्रष्टा पुरुष के द्वारा उनका प्रतिपादन स्वीकार करते ही हैं, तो आप क्यों वैसा नहीं कर सकते?

**मीमांसक** – हमारा आशय आप समझ नहीं पाये। हम यह कहना चाहते हैं कि ऐसा कभी नहीं हुआ कि पहले किसी ने वेदों की अधिव्याक्ति

न की हो और बाद में किसी ने उसका प्रथम प्रारम्भ किया हो। तात्पर्य, सभी सज्जनों ने पूर्वकाल में जैसी अभिव्यक्ति चली आती थी ऐसी ही अभिव्यक्ति को अपनाया। स्वतन्त्ररूप से किसी ने भी वेदों की अभिव्यक्ति नहीं की। इस तरह अभिव्यक्ति नित्य न होने पर भी परम्परा की दृष्टि से तो वह नित्य एवं अनादि ही सिद्ध होती है। इस तरह पुरुष की स्वतन्त्रता के अभाव को ही हम अपौरुषेयत्व कहते हैं। कोई भी वक्ता ने स्वतन्त्ररूप से क्रम नहीं बनाया, यही वेदों का अपौरुषेयत्व है।

**उत्तरपक्ष** — इस तर्क से वेदों की अनादिता यद्यपि सिद्ध होती है, लेकिन उसकी अपौरुषेयता सिद्ध नहीं की जा सकती। वस्तुतः देखा जाय तो कितनी ही क्रियाएँ ऐसी हैं, कितने ही शिल्प ऐसे हैं जिनको एक व्यक्ति दूसरे को देखकर ही सीख पाता है। एक व्यक्ति जैसे उनको करता है, दूसरा उसका अनुसरण करके उसी तरह उन्हें प्रयोजित करता है। सामान्यतया स्वतन्त्ररूप से उन क्रिया, शिल्प इत्यादि का प्रवर्तन हो नहीं सकता। फिर भी अतिविशिष्ट प्रज्ञावान् व्यक्ति स्वतन्त्रता से उनका प्रवर्तन कर सकता है ऐसा हम स्वीकारते ही हैं। ऐसा न भी माने तो भी उन क्रियादि को हम अनादि मानेंगे, नित्य मानेंगे, परम्भु अपौरुषेय तो नहीं मानेंगे। अन्यथा बालकों की पांशुक्रीडा को भी इस तरह अपौरुषेय मानने की आपत्ति आएगी। मतलब यह है कि इस तर्क से आप वेद की अपौरुषेयता सिद्ध नहीं कर सकते।

दूसरी बात, सम्पूर्ण वेदाध्ययन पूर्व पूर्व गुरुपरम्परागत अध्ययन का अनुगामी है, अतः कोई भी वेदाध्ययन स्वतन्त्ररूप से हो नहीं सकता, फलतः वेद अनादि एवं अपौरुषेय सिद्ध होंगे ऐसा स्वीकार यदि आप करना चाहे तो इस प्रकार का कथन तो अन्य ग्रन्थों के विषय में भी हो सकता है कि कादम्बरी आदि का अध्ययन पूर्व पूर्व परम्परागत अध्ययन का अनुगामी है। तब तो वे ग्रन्थ भी अनादि और अपौरुषेय सिद्ध होंगे। और उनको भी प्रमाणभूत गिनने का प्रसङ्ग उपस्थित होगा।

**मीमांसक** — कादम्बरी आदि के कर्ता तो सुनिश्चित हैं। इसलिए वहाँ अपौरुषेयत्व की शङ्का उठने का कोई प्रश्न ही नहीं रहता।

**उत्तरपक्ष** — वेद के कर्ता को भी याद किया जाता है। कोई

हिरण्यगर्भ को वेद का कर्ता मानते हैं। दूसरे विद्वान् अष्टक आदि ऋषि को याद करते हैं। ऐसे अन्य भी मत हैं।

**मीमांसक** — कादम्बरी आदि के कर्ता के विषय में कोई विवाद नहीं है। लेकिन वेद के कर्ता के विषय में हिरण्यगर्भ, अष्टक आदि अनेक ऋषिमुनिओं के नाम सुने जाते हैं। इस तरह मतभेद होने से कर्ता का स्मरण विवादग्रस्त है, इसलिए वह मिथ्या है।

**उत्तरपक्ष** — कर्तृविशेष विवादग्रस्त होने पर कर्तृविशेष के स्मरण को ही हम असत्य कह सकते हैं, सामान्यतः कर्तृस्मरण को नहीं। मतलब कि इन विवादग्रस्तता से वेदों का कोई न कोई कर्ता जरूर है इस बात का अपलाप नहीं हो सकता।

**मीमांसक** — हम वेद को किसी भी कृति नहीं मानते। अतः वेद के कर्तृसामान्य में भी मतभेद तो है ही। इसलिए वेद में सामान्यतः कर्तृस्मरण विवादग्रस्त होने से उस स्मरण को मिथ्या समझना चाहिए।

**उत्तरपक्ष** — अरे! वैसे तो कर्तृ-अस्मरण थी विवादग्रस्त ही है, तो उसको क्यों न मिथ्या समझा जाय ?।

**मीमांसक** — वेद का यदि कोई कर्ता होता तो ब्राह्मणादि तीनों वर्ण के लोक वेदोक्त अर्थ के अनुष्ठानकाल में उसका स्मरण अवश्य करते। किन्तु कर्ता के स्मरण के बिना भी विश्वसनीय लोग प्रवृत्ति करते हैं, इसलिए वेद का कोई कर्ता नहीं है।

**उत्तरपक्ष** — आप खुद ही सोचिये कि अन्य बौद्धादि आगमों के विषय में भी इसी युक्ति का तुल्यरूप से प्रयोग हो सकता है या नहीं ?। तात्पर्य यह है कि उपरोक्त युक्ति अन्य आगम में भी तुल्यरूपेण लागु हो सकेगी, तो उन आगम को भी अपौरुषेय मानने की आपत्ति आएगी।

वैसे यह नियम भी नहीं है कि इष्ट अर्थ के अनुष्ठानकाल में उसके कर्ता का स्मरण करके ही अनुष्ठान लोग प्रवृत्ति करे। पाणिनि आदि द्वारा विरचित व्याकरण से उपदिष्ट शास्त्रिक व्यवहार का जब जब पालन किया जाता है तब वे व्यवहारकर्ता पहले नियमतः पाणिनि आदि का स्मरण करे

ही ऐसा कभी देखा नहीं जाता । यदि ऐसा नियम होता तो उक्त अस्मरण के बल पर वेद को अकर्तृक सिद्ध कर सकते, पर ऐसा नहीं है ।

इस तरह सोचने पर वेद उत्पत्तिशील एवं पौरुषेय ही प्रतीत होते हैं, नित्य व अपौरुषेय नहीं ।

\*

सन्मतितर्क की तत्त्वबोधविधायिनी वृत्ति में हुई वेद के अपौरुषेयत्व की चर्चा का सार उपर प्रस्तुत किया गया है । मूल चर्चा अतिशय विस्तृत है एवं कठिन-गहन तर्कजाल से मण्डित है । सारल्य व सङ्क्षेप हेतु उसमें से बहुत कुछ यहाँ छोड़ दिया गया है । तर्कों के प्रस्तुतीकरण में भी कुछ भिन्न परिपाटी अपनाई गई है । लेकिन यह सब करते वक्त मूल चर्चा के हार्द को हानि न पहुँचे इसका यथाशक्य ध्यान रखा गया है । प्रारम्भिक विद्यार्थी एवं जिज्ञासुगण लाभान्वित हो ऐसी दृष्टि मुख्यतया रखी गई है । अधिक गहराई से जानने हेतु मूल चर्चा अवलोकनीय है ।

वेद के अपौरुषेयत्व को विषय बनाकर जैन प्रमाणग्रन्थों में और अन्य अनेक जैनशास्त्रों में चर्चा का उपन्यास हुआ है । कहीं वह चर्चा अतिसङ्क्षिप्त है, तो कहीं अतिविस्तृत । चर्चा के मुख्य पहेलू तो वहाँ वे ही हैं जो सन्मतितर्कवृत्ति में हम दिखते हैं । फिर भी हर ग्रन्थकर्ता की ओर से उसमें कुछ न कुछ तो संजोया गया ही है । एक ही बात शैलीवशात् कितने विभिन्न रूपों में परिवर्तित होती है यह हमें इन चर्चाओं से ज्ञात होता है । उसमें भी न्यायदर्शन की इस विषय की चर्चा में तो कुछ और ही निखार आया है । यद्यपि यह लेखश्रेणी तत्त्वबोधविधायिनी पर ही अवलम्बित है एवं सारल्य व सङ्क्षेप को हानि न पहुँचाते हुए चर्चा प्रस्तुत करना यही इसका उद्देश्य है, इसलिए ग्रन्थान्तरगत चर्चाओं का सारदोहन यहाँ नहीं दिया गया; तथापि प्रारम्भिक स्तर पर इस विषय में जो जानकारी होनी चाहिए वह यहाँ मिले ऐसा प्रयास अवश्य किया गया है ।

\*

बेंगलूरुनगर-स्थित 'संस्कृतभारती' संस्था से ई. २००१ में एक पुस्तिका प्रकाशित हुई है, जिसका नाम है — ऋणविमुक्ति । एच्. वी.

नागराजराव् इसके लेखक हैं। संस्कृत भाषा में लिखित इस पुस्तिका में महर्षि अष्टावक्र की जीवनी का रम्य चित्रण हुआ है। इस पुस्तिका के पृष्ठ ४८-४९ पर अष्टावक्र के पिता ऋषि कहोड़ और महाराज जनक के आस्थानपण्डित बन्दी के बीच हुई शास्त्रचर्चा का सरल सझेप्रस्तुत किया गया है, जिसका प्रमुख विषय है — वेदों की पौरुषेयता-अपौरुषेयता। कहोड़ ऋषि वेद की अपौरुषेयता के पक्षधर हैं, जबकि बन्दिपण्डित पौरुषेयता के समर्थक हैं। विद्यार्थीओं के लिए उस चर्चा को उपयोगी समझकर उसका सरल भावानुवाद यहाँ प्रस्तुत है —

**कहोड़** — वेद अनादि हैं। वे जगत्कर्ता के निःश्वासरूप हैं। उनका आधार लेकर ही जगत् का निर्माण हुआ है। फलतः जगत् के पूर्व ही वेद स्थित थे ऐसा समझना चाहिए। प्रलय के बाद भी वे अवस्थित रहेंगे। उन्हीं वेदों का पुनः पाठ होगा। विष्णु उन्हीं वेदों का उपदेश ब्रह्मा को देंगे। बाद में ब्रह्मा जगत् का सर्जन करेंगे। उससे गुरु-शिष्य परम्परा चलेगी। तात्पर्य यह निकला कि वेद मानवकृत नहीं हैं। अतः वे अपौरुषेय हैं।

**बन्दी** — बोध उत्पन्न करनेवाले पदों का समूह ही वाक्य होता है और वेद ऐसे वाक्यों का समुदाय ही है। अपने अभिप्राय को प्रकट करने के लिए लोक में वाक्यप्रयोग होता है यह प्रत्यक्षसिद्ध है। वर्तमान में जैसे हम अर्थबोधक वाक्यों का प्रयोग करते हैं। वैसे ही भूतकाल में पूर्वजों के द्वारा प्रयुक्त वाक्यों का समूह ही वेद हैं। ‘वेद जगत्कर्ता के निःश्वासरूप हैं’ इत्यादि जो कहा जाता है वह श्रद्धा उत्पन्न करने के लिए किया गया अर्थवादमात्र है। वास्तव में जो जो वाक्य होता है, वह पुरुषरचित ही होता है ऐसी व्याप्ति है। इसलिए वेद पौरुषेय हैं इस बात में कोई संशय नहीं रहता।

**कहोड़** — लोग खुद को जिसका अनुभव होता है उसकी ही बात करते हैं, उसी विषयों में अपने अभिप्राय को व्यक्त करने हेतु वाक्य बनाते हैं। अब वेद में ऐसे कितने ही विषय प्रतिपादित हैं, जिनका ज्ञान मनुष्य कभी भी नहीं कर सकता। धर्म और उसके उपायभूत यज्ञादि सब अलौकिक हैं। एक मनुष्य सिवा आगम के, केवल प्रत्यक्ष या अनुमिति से उसे कैसे

जान सकता है ? अतः उन विषयों के प्रतिपादक वेद अपौरुषेय ही हो सकते हैं ।

**बन्दी** — कल्पना एवं ऊहा के बल पर मनुष्य क्या क्या नहीं बोलते ? लोक में कहीं भी दिखाई न देनेवाली बातें कथाओं में सुनने नहीं मिलती ? वैसे ही परलोक, यज्ञ, स्वर्ग सब काल्पनिक हैं । उससे वेदों की अपौरुषेयता सिद्ध नहीं हो सकती ।

इसके अलावा, वेदों में कितने ही कामना के सूचक वाक्यादि देखने मिलते हैं । जैसे कि — ‘हमारे बच्चों पर कोप मत करना, हमारे आयुष्य की रक्षा करना, हमें अन्न दो, वस्त्र दो, गाय दो’ । ऐसे वाक्य क्या सूचित करते हैं ? आशा लेकर बैठे हुए किसी प्राकृत मनुष्य के ही ये सब उद्धार हैं ऐसा स्पष्टतः प्रतीत नहीं होता ? ‘अक्षों से मत खेलो’ इत्यादि चेतावनी घृतक्रीडा के अनिष्टों को देखकर ही दी जा रही है । तब वेद अपौरुषेय कैसे हो सकते हैं ?

**कहोड़** — यदि वेद पुरुषरचित होते तो उनके कर्ता का उल्लेख अवश्य मिलता । लेकिन वैसा उल्लेख कहीं नहीं मिलता । आपने जो बातें बताई वे सब मानवकुल के हित, की बातें हैं । हित में प्रवर्तन और अहित से निवर्तन शास्त्र का लक्ष्य होता है । वह कार्य यदि अपौरुषेय वेद करे तो उसमें क्या आपत्ति हो सकती है ? ।

**बन्दी** — सभी मन्त्रों के ऋषियों का कीर्तन होता है । मन्त्रों के उच्चारण से पूर्व हम गृत्स्नम, विश्वामित्र, अघमर्षण आदि उन उन मन्त्रों के रचयिता पुरुषों को याद करते ही हैं । बहुत सारे ऋषियों के द्वारा रचित मन्त्रों का सङ्ग्रह वेद में हुआ है । इसलिए यद्यपि वेदों का कोई एक कर्ता नहीं है, तथापि वे पौरुषेय हैं इस बात का अपलाप हो नहीं सकता ।

**कहोड़** — ऋषियों मन्त्रदण्ड होते हैं, मन्त्रकर्ता नहीं । उन्होंने अपने तप के प्रभाव से मन्त्रों की जो शाश्वत आनुपूर्वी थी, उसका साक्षात्कार किया । उन साक्षात्कृत मन्त्रों का उपदेश उन्होंने लोक को दिया इसलिए हम उनके नाम का तत्र तत्र स्मरण करते हैं । न कि उन ऋषियों ने किसी नये मन्त्र की रचना की है इसलिए । इस तरह ऋषि वेद के कर्ता सिद्ध न होने से

वेद अपौरुषेय ही हैं ।

**बन्दी** — वेद नित्य हैं यह बात ही निरर्थक है । वेद में वशिष्ठ ऋषि और विश्वामित्र का कलह वर्णित है । दाशराजाओं के युद्ध का भी उसमें निर्देश है । स्पष्ट है कि ये घटनाएँ जब घटित हुईं तब या उसके अनन्तरकाल में ही उनका जिक्र वेद में किया गया है । यदि वेद नित्य होते, तो उन किसी समयविशेष में घटित घटनाओं का वर्णन उनमें कैसे मिलता ? इससे यह सिद्ध होता है कि वेद अनित्य हैं और पौरुषेय हैं ।

\*

अपौरुषेयत्व की चर्चा करते वक्त जैन दर्शनकारों के समक्ष एक प्रश्न अवश्य उपस्थित होता है, और वह है जैन मूल आगमस्वरूप द्वादशाङ्ग गणिपिटक की अनादिता का । जैन मन्त्रव्य अनुसार परम आप्तपुरुषभूत कोई भी तीर्थङ्कर वही उपदेश देते हैं जो कि उनके पूर्व तीर्थङ्करों के द्वारा प्रश्नपत किया जा चूका है । कोई भी तीर्थङ्कर नया कुछ भी नहीं कहते, उनकी सम्पूर्ण वचनधारा पूर्व वचनधारा का अनुसरण ही करती है । तीर्थङ्करों के उपदेश का सङ्ग्रह ही बारह विभागों में विभक्त होकर 'द्वादशाङ्गी' कहलाता है, जो कि प्रत्येक तीर्थङ्कर की अपेक्षा अलग-अलग होते हुए भी तत्त्वतः समान होता है । यह द्वादशाङ्गी ही जैनदर्शन में 'वेद' की तरह सम्माननीय व सर्वथा प्रमाणभूत गिनी जाती है । तात्पर्य यह निकलता है कि कोई तीर्थङ्कर ऐसे हुए ही नहीं कि जिन्होंने पूर्व तीर्थङ्करों की वचनरचना का अनुसरण किया ही न हो और न तो ऐसी द्वादशाङ्गी कभी हुई कि जो पूर्व द्वादशाङ्गी से समानता न रखती हो । ऐसी स्थिति में द्वादशाङ्गी को अनादि ही समझनी होगी । और जो अनादि हो वह पौरुषेय कैसे हो सकती है ? स्वयं जैन शास्त्रकारों ने द्वादशाङ्गी को ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षर, अव्यय एवं नित्य रूप में वर्णित करके उसकी अपौरुषेयता की ओर ही सङ्केत किया है । इस स्थिति में वेदों की अपौरुषेयता से इसमें अन्तर क्या रहता है ? ।

इस प्रश्न का समाधान अनेकान्त दृष्टि से ही समझा जा सकता है । शास्त्र के दो पक्ष हैं - शब्दपक्ष और अर्थपक्ष । अर्थ की अपेक्षा सब तीर्थङ्करों का उपदेश समान होने से द्वादशाङ्गी भी समान ही होती है । तात्पर्य, तीर्थङ्कर

जो तत्त्व जिस रूप में है उसीकी प्ररूपणा करते हैं, कुछ नया नहीं कहते। अब तत्त्व तो सदाकाल समान ही होते हैं, तो प्ररूपणा में अन्तर कैसे हो सकता है?। तीर्थङ्करों के वचनों में या द्वादशाङ्गी में जो पूर्व का अनुसरण कहा जाता है वह अर्थ की अपेक्षा से ही समझना चाहिए। तत्त्वप्ररूपणा को नजर में रखने पर ही अनन्त द्वादशाङ्गीओं में कोई भिन्नता नहीं दिखती, और इस ऐक्य के बल पर उन अनन्त द्वादशाङ्गीओं को एक समझकर द्वादशाङ्गी की अनादिता व ध्रुवता (और फलतः अपौरुषेयता) प्रतिपादित की जा सकती है।

लेकिन हम जब द्वादशाङ्गी के वचनपक्ष की बात करते हैं, तब उन्हें नित्य या ध्रुव या अपौरुषेय प्रतिपादित नहीं कर सकते। तीर्थङ्करों के उपदेशों की और उनके सद्ग्रहस्वरूप द्वादशाङ्गी की वचनरचना में तो परिवर्तन होते ही रहते हैं। शब्दों की अपेक्षा शाश्वत कुछ नहीं है। दो द्वादशाङ्गी की वचनरचना एकसमान नहीं हो सकती। इस दृष्टि से देखे तो प्रत्येक द्वादशाङ्गी तीर्थङ्करप्रणीत एवं गणधरग्रथित होने से पौरुषेय ही है, अपौरुषेय नहीं। तीर्थङ्करों से उत्पन्न होने की वजह से वह उत्पत्तिशील है, नित्य नहीं। सद्क्षेप में कहें तो शाश्वत तत्त्वों का अशाश्वत कथन यानी द्वादशाङ्गी। अपौरुषेय तत्त्वों की पौरुषेय प्ररूपणा यानी द्वादशाङ्गी।

वैदिक परम्परा में ऋषिमुनिओं को जब मन्त्रस्थान के स्थान पर मन्त्र-द्रष्टा के रूप में वर्णित किये जाते हैं, तब इसी वात का सङ्केत दिया जाता है कि वह तत्त्व तो सूक्ष्म रूप से सृष्टि में मौजूद ही था। ऋषिमुनियों ने अपनी दिव्य दृष्टि से उसका साक्षात्कार किया और उसे स्थूल शब्ददेह दिया। यही उनका कर्तृत्व है। जैन आगमों में भी यही बात लागू होती है।

इस तरह अनेकान्त दृष्टि से पौरुषेयता-अपौरुषेयता का विवेचन किया जाय तो चाहे जैन आगम हो, चाहे वेद हो - कहीं किसी भी तरह की मुठभेड़ को अवकाश नहीं मिलता और सुचारू समन्वय हो सकता है। स्याद्वादो विजयतेराम्।

टूंक नोंदू :

## ओक भ्रष्ट पाठे चर्जेली समर्थ्या

- मुनि त्रैलोक्यमण्डनविजय

महोपाध्याय श्रीयशोविजयजी रचित न्यायालोक प्रकरण पर परमगुरु श्रीविजयनेमिसूरिजी महाराजे वृत्ति रची हती. तेनां घणां वर्षों बाद आ प्रकरण पर 'भानुमती' नामनी वृत्ति रचाई. आ वृत्तिमां केटलेक ठेकाणे पूर्ववृत्तिगत प्रस्तुपणाओनुं खण्डन करवामां आव्युं छे. ते खण्डनना वाजबीपणा विषे अवसरे विमर्श करवायोग्य छे. पण आ लखाणमां तो एक ज खण्डनस्थळ पर चर्चनि सीमित राखी छे. आ चर्चा न्यायदर्शन अन्तर्गत आवता समवाय-सम्बन्धनी सिद्धिने सम्बन्धित छे अने नव्यन्यायनी परिभाषामां गूथायेली छे.

घटनो नाश थाय एटले घटगत रूपादिस्मो पण नाश थाय ज ए देखीतुं छे. मतलब के घटगत रूपादिना नाशमां घटनाश अे कारणभूत बने छे. आ कार्यकारणभाव नव्यन्यायनी परिभाषामां आम बोलाशे - "प्रतियोगितया घटादिसमवेतनाशं प्रति स्वप्रतियोगिसमवेतत्वसम्बन्धेन घटादिनाशस्य हेतुत्वम्।" आनो भाव आम छे - न्यायमते कार्यकारणभाव अेक अधिकरणमां रहेनारा पदार्थों वच्चे ज सम्भवित छे. कार्यभूत घटरूपादिनाश अे प्रतियोगिता सम्बन्धथी घटरूपादिमां रहे छे. (केम के जेनो नाश थाय ते प्रतियोगी कहेवाय अने नाश प्रतियोगिता नामना सम्बन्धथी तेमां रहे. जेम के पट अे पटनाशनो प्रतियोगी छे अने पटनाश प्रतियोगितासम्बन्धथी पटमां रहे छे.) अने अे घटरूपादिरूप अधिकरणमां कारणरूप घटनाश पण स्वप्रतियोगिसमवेतत्वसम्बन्धथी रहे छे. स्व = घटनाश. तेनो प्रतियोगी = घट. तेमां समवेत = समवायसम्बन्धथी रहेनार घटरूपादि. आम कारणरूप घटनाश अने कार्यभूत घटरूपादिनाश-बने समानाधिकरण (घटरूपादिरूप एक ज अधिकरणमां रहेनारा) बन्या. अने एटले 'प्रतियोगितासम्बन्धथी घटरूपादिना नाश प्रत्ये स्वप्रतियोगिसमवेतत्व-सम्बन्धथी घटनाश कारण छे.' अेवो कार्यकारणभाव स्थिर थयो.

पण, आ कार्यकारणभावमां अेक आपत्ति आवी शके छे. घटना रूपादि तो घटनी विद्यमानतामां पण बदलाई शके छे. आमां जूना रूपादिनो

जे नाश थयो तेमां तो घटनाश कारणभूत नथी ज. अटले घटरूपादिनाशरूप कार्य थाय छे, पण घटनाशरूप कारण वगर. तेथी उपरोक्त कार्यकारणभाव खोटो ठरे छे. (न्यायमते आ व्यभिचार कहेवाय.)

आना निवारण माटे आपणे अेवो कार्यकारणभाव बनावको पडशे के 'घटनाशना समानकालीन घटरूपादिनाश प्रत्ये घटनाश कारणभूत छे'. आ समानकालीनता अटले ज कालिकसम्बन्धथी अेक जन्य पदार्थनुं अन्य जन्य पदार्थमां रहेवुं. अटले न्यायमते अेम बोलाशे के प्रतियोगितासम्बन्धथी घटरूपादिना (केवा घटरूपादि ? जे घटनो नाश लेवानो छे तेमां जे समवायसम्बन्धथी रह्या छे अने घटनाशना समकालीन छे तेवा) नाश प्रत्ये स्वप्रतियोगि-समवेतत्वसम्बन्धथी घटनाश कारणभूत छे. आमां घटरूपादिने विशेषित कर्या होवाथी, अन्य घटनां रूपादिना नाशमां के घटकालीन रूपादिना नाशमां घटनाश कारणभूत न बनवा छतां, पहेलेथी ज अेमनो कार्यकारणभावमां स्वीकार न होवाथी, उपरोक्त आपत्ति आवती नथी. आ कार्यकारणभाव संस्कृतमां आम लखाशे - "प्रतियोगितया स्वप्रतियोगिसमवेतत्वस्वाधिकरणत्वो-भयसम्बन्धेन नाशवन्नाशत्वावच्छिन्नं प्रति स्वप्रतियोगिसमवेतत्वेन नाशस्य हेतुत्वम्।"

उपर जणावेली व्यभिचारनिवारणनी चर्चा परमगुरुओ न्यायालोकनी वृत्तिमां आम वर्णवी छे -

"द्विक्षणस्थायिनस्त्रिक्षणस्थायिनो वा रूपादेद्वित्वादिसङ्ग्रह्याद्विपृथक्त्वादेः संयोगादेवा नाशस्य घटादिनाशमन्तरेरैव घटादिसत्त्वकाले उत्पादेन तादृशरूपादेः द्वित्वसङ्ग्रह्या-द्विपृथक्त्वादेः संयोगादेश्च घटनाशासमानकालीनतया कालिकसम्बन्ध-वच्छिन्नं-स्वनिष्ठनिरूपकतानिरूपिताधिकरणतारूपद्वितीयसम्बन्धस्याऽभावेन नोक्तोभयसम्बन्धेन तत्र घटादिनाशस्य सत्त्वमिति..."

पण भानुमतीकारने आ वात बराबर नथी लागी. तेथी तेओओ आना परं आवी खण्डनात्मक टिप्पणी करी छे -

"केचित्तु द्विक्षण... इति व्याख्यानयन्ति, तन, एवमपि द्वित्रिक्षण-स्थायिरूप-द्वित्वादिसङ्ग्रह्या-पृथक्त्व-संयोगादेवा नाशे व्यभिचारवारणासम्भवात्। वस्तुतस्तत्र रूपादौ प्रतियोगितासम्बन्धेन ध्वंस एव नाऽभ्युपगम्यते, किन्तु

द्वित्रिक्षणस्थायिरूपादिसमवायिकारणे एवेति न व्यभिचारः । तदुक्तं पूर्वपक्षव्याख्यायां बृहत्परिमाणस्याद्वादरहस्ये - घटादिकालीनसंयोगादिध्वंसे व्यभिचारवारणाय प्रतियोगितया इति ।”

आ टिप्पणीमां बे वात विचारणीय छे —

१. उपर जोयुं तेम परिष्कार कर्या पछी व्यभिचार नथी ज रहेतो अटले व्यभिचारनुं वारण करी ज शकाय छे. वारण अशक्य नथी. तेथी ‘व्यभिचारनुं वारण करवुं असम्भवित छे’ अेवी आपत्ति बराबर नथी.

२. न्यायशास्त्रना सामान्य अभ्यासीने पण ख्यालमां होय ज के जे वस्तुनो नाश थाय ते ज वस्तु ते नाशनी प्रतियोगी गणाय. अने नाश प्रतियोगितासम्बन्धथी ते ज वस्तुमां रहे. पण भानुमतीकार घटरूपादिना नाशने प्रतियोगितासम्बन्धथी घटरूपादिमां नहि, पण घटरूपादिना समवायी कारण घटमां स्वीकारे छे. केम के तेओ कहे छे — “वस्तुतस्तत्र रूपादौ प्रतियोगिता-सम्बन्धेन ध्वंस एव नाऽभ्युपगम्यते, किन्तु द्वित्रिक्षणस्थायिरूपादिसमवायिकारणे एव ॥” आ विधान समजबुं मुश्केल छे. कारण के जो घटरूपादिनाश प्रतियोगितासम्बन्धथी घटरूपादिमां नहीं, पण घटमां स्वीकारीअे, तो अे नाशनो प्रतियोगी घट बने, घटरूपादि नहीं, अने तो अे नाश घटरूपादिनो नाश गणाय ज कई रीते ? ।

वळी, भानुमतीकारे स्वमतना समर्थनमां बृहत्स्याद्वादरहस्यनो जे पाठ टांक्यो छे, ते पाठ पोते त्रुटित छे अने सम्पादननी क्षतिने लीधे अशुद्ध पण बन्यो छे. बृहत्स्याद्वादरहस्य (कर्ता - उपाध्याय श्रीयशोविजयजी, सं. - श्रीजयसुन्दरसूरिजी)मां आ पाठ आम छपायो छे — “घटादिकालीन-संयोगादिध्वंसे व्यभिचारवारणाय ‘प्रतियोगितया’ । स्वप्रतियोगिसमवेतत्व-स्वाधिकरणत्वोभय-सम्बन्धेन नाशवन्नाशत्वावच्छिन्नस्य हेतुत्वावश्यकतया...” आ पाठ अर्थसङ्गतिनी दृष्टिअे देखीती रीते अशुद्ध छे. पूर्वे आपणे कार्यकारणभावनी जे चर्चा करी तेना आधारे आने सुधारबो होय तो आम सुधारी शकाय : “०वारणाय प्रतियोगितया स्वप्रतियोगिसमवेतत्वस्वाधिकरणत्वोभयसम्बन्धेन नाशवन्नाशत्वा-वच्छिन्न [एव स्वप्रतियोगिसमवेतत्वेन नाशत्वावच्छिन्न]स्य हेतुत्वावश्यकतया...” आ सुधारो फक्त अर्थसङ्गतिना आधारे पण शक्य छे ज. पण तेना माटे अन्य

प्रमाणो पण मळी शके. कारण के उपाध्यायजी भगवन्ते समवायसिद्धिनी चर्चा अनेक प्रकरणोमां करी छे. जेमां लगभग समान दलीलो चर्चाई छे. ऐटले प्रस्तुत तर्कमां प्रयोजायेली पदावलीनी समान पदावली अन्य ग्रन्थोमां मळे ज. अने तेना आधारे प्रस्तुत पाठ त्रुटि छे एम समजी पण शकाय अने तेने सुधारी पण शकाय. जेम के उपाध्यायजीअे ज रचेली अनेकान्तव्यवस्थामां आम पाठ मळे छे : “न च घटादिसमवेतनाशमात्रे न घटादिनाशो हेतुः, घटादिकालीनतद्वित्तिक्रियासंयोगविभागवेगद्वित्वादिनाशे व्यभिचारात्; किन्तु प्रतियोगितया स्वप्रतियोगिसमवेतत्व-स्वाधिकरणत्वोभय-सम्बन्धेन नाशवन्नाशत्वा-वच्छ्वन् एव स्वप्रतियोगिसमवेतत्वेन नाशत्वावच्छिनस्य हेतुत्वात्... ॥” आ पाठना आधारे बृहत्स्याद्वादरहस्यनो उपरोक्त पाठ सहेलाईथी सुधारी शकाय तेम छे. पण आवा समान्तर सन्दर्भे तरफ सम्पादकश्रीनुं ध्यान नथी गयुं जणातुं. अने आ पाठ त्रुटि छे अेवुं पण कदाच तेओना ध्यान पर नथी आव्युं. अने ऐटले तेओअे आम छाप्युं छे —

‘घटादिकालीनसंयोगादिध्वंसे व्यभिचारकरणाय प्रतियोगितया ।’ वास्तवमां ‘प्रतियोगितया’ आगळ वाक्य पूरुं नथी थतुं, पण आगळ चालु रहे छे. परन्तु जो आ रीते वाक्य पूर्फु करी देवामां आवे तो अनो अेवो भव्हतो ज अर्थ नीकळे के ‘घटनी विद्यमानतामां थता संयोगादिना ध्वंसमां व्यभिचारना वारण माटे प्रतियोगितया पद छे.’ तात्पर्यतः आवा ध्वंस प्रतियोगितासम्बन्धथी ते संयोगादिमां नथी रहेता अेवो खोटो मतलब आनो नीकळे. अने सम्भवतः आवा खोटो मतलबना आधारे ज भानुमतीकारे आ पाठने स्वमतना समर्थनमां टांक्यो छे, अने परमगुरुनी प्ररूपणानुं खण्डन कर्युं छे.

सम्पादननी क्षतिने लीधे सज्जियेलो अेक खोटो पाठ अने तेनुं भव्हतुं अर्थघटन आपणने साची वातथी केटले दूर लई जई शके तेनुं आ अेक विस्मयजनक उदाहरण छे.

## विहंगावलोकन-अङ्क ७०

— उपा. भुवनचन्द्र

अनुसन्धान-७०ना प्रारम्भे प्रकाशित पांच स्तोत्र लघु छे पण भावसभर छे. ‘भगवते ऋषभाय नमो नमः’ आ पंक्ति आजे पण प्रचलित छे, तेनु मूलस्थान अहीं प्रकाशित आदिनाथस्तोत्रमां छे. ‘अद्य मे...’थी शरु थतो श्लोक आमां छे तेना जेवा अन्य श्लोको बीजे जोवा मळे छे. आ प्रकारनी रचनाओ लोकप्रिय बने छे अने तेनी अनु-रचनाओ थवा मांडे छे, पछी कई मूल रचना अने कई अनुरचना – ए कहेवुं मुश्केल बनी रहे। जो के ए मूल कृतिनी लोकप्रियतानुं अने भावगर्भ कृति होवानुं प्रमाण बनी रहे।

पार्श्वनाथ स्तोत्रमां इजा श्लोकमां ‘विवेकाक्षम्’ छे त्यां ‘विवेकाख्यम्’ होय तो वधु बंध बेसे। अन्ते कलशना श्लोकमां ‘जिनपतिपादाः’ पाठ सम्भवित छे.

यमकबन्धयुक्त जिनस्तव ए जैन स्तोत्रसाहित्यमां एक सशक्त कृतिना उमेरारूप छे. शब्दनी चमत्कृतिथी समृद्ध रचना छे. आवी कृतिने समजवा माटे सम्पादक पासे संस्कृतनो गाढ अनुभव होवो जोईए. पंचपाठी-सूक्ष्माक्षरी प्रत परथी सम्पादन करवुं ए पण एक पडकार होय छे. प्रस्तुत कृतिनुं सम्पादन खूब सुन्दर थयुं छे.

‘वस्तुपालादिप्रशस्तिसंग्रह’ एटले आ अङ्कनुं अमूल्य नजराणुं. वस्तुपाल-तेजपालना सुकृतोनो प्रमाणित आलेख आमां सचवायो छे. कविए सूचिने सूचि न रहेवा देतां काव्यनी कक्षाए पहोंचाडी छे. नाम-ठाम साथेना वृत्तान्त आ बन्ने वीरनायकोनी जीवनीमां अद्भुततानो रंग पूरे छे. बीजा भागमां कुमारपालना दण्डनायक राणिंग तथा तेना पूर्वजो अने सन्तानोए करेलां धर्मकार्योनी सूचि आ महानुभावोना धर्मानुराग अने सामर्थ्यनी मनोहर छबी रजू करे छे.

इतिहासकारो माटे आवी सामग्री किंमती दस्तावेज समान गणाय. अनु.ना सम्पादक आचार्यश्रीए आ कृतिनी विगतोनुं सारग्राही अवतरण-अवलोकन करी आप्युं छे अने इतिहासना सन्दर्भों तारबी आप्या छे.

अनुसन्धान जेवा संशोधनपत्रोमां आवी मूल्यवान दस्तावेजी सामग्री प्रगट

थती होय छे जे क्यांक खूटती कडी पूरी पाडती हशे, तो क्यांक कोई भ्रम-शङ्कानुं निरसन करती हशे, ने क्यारेक तो नूतन अज्ञातपूर्व जाणकारी बहार लावती हशे. विद्वानो द्वारा अद्यावधि जे इतिहासलेखन ग्रन्थस्थ थयुं होय, ते पछी मळेली आवी सामग्रीनो यथास्थाने समावेश करीने ते-ते इतिहासने संवर्धित-update करवानुं काम पण थवुं जोईए. अन्यथा, प्रकीर्णपत्रोमांथी जडेली विगतो पत्र/पत्रिकानां पानांओमां पूराइने पाढी 'खोवाइ' जई शके छे. कोई पण ग्रन्थना पुनःप्रकाशन पूर्वे, तत्सम्बन्धी सामग्री एकत्र करीने पूर्ति करी लेवानुं कर्तव्य सम्पादकोनुं गणाय. आपणा सम्पादक मुनिओ आ कर्तव्य तरफ बेध्यान रहेता जोवा मळे छे.

मन्त्रीश्वरे दिगम्बर जिनालयना पण जीर्णोद्धार वगेरे कराव्या छे. आ प्रशस्तिमां 'क्षपणक' शब्द आवे छे. दिगम्बरमुनिना सम्बन्धमां आ शब्द वांच्यानुं याद आवे छे. अहीं 'खत्क' शब्द आव्यो छे. तेनो अर्थ सम्पादके आव्यो नथी. ए गवाक्ष-गोख छे के बीजुं कंइ छे ?

सर्वविजयजी कृत 'पुण्डरीकशब्दशतार्थी' कौतुककारी रचना छे. पुण्डरीक शब्दना अनेक अर्थ तो छे, पण सो नथी; परन्तु अहीं सो वखत आ शब्द गूंथी लेवामां आव्यो छे अने उच्चारभेद, सन्धिछेद, अक्षरोनां परिवर्तन वगेरे द्वारा नवा नवा अर्थ नीपजाववामां आव्या छैं. आ एक प्रकारनी शब्दरमत छे जे विद्वानोने माटे छे.

सप्तवर्गाक्षरवरेण्य... नामक रचना पण एवी ज कौतुकरंगी विद्वद्भोग्य कृति छे. कर्तानो उद्देश सज्जन-दुर्जन अथवा उत्तम-नीच, धर्मी-अधर्मीनां चित्र प्रस्तुत करवानो छे अने ते माटे भाषाना आधारे रमतियाळ ढबे शब्दचित्रो सर्ज्या छे. बाराखडीना एक-एक अक्षर उपरथी सारामां शुं होय, नठारामां शुं होय ते हळवाशथी वर्णव्युं छे.

सम्पादकश्रीए कृतिगत शब्दोनी भाषाकीय तपास करवानो श्रम उठाव्यो छे. कृतिकरे पोते ज कृतिमाना शब्दोना अर्थ नोंध्या छे, पण एम करतां जे पर्यायो आप्या छे ते पण तपास मांगे छे ! सम्पादकजीए ए पण तपास्युं छे. कर्ता विनोदप्रिय तो छे ज, परंतु व्यवहारजगतना सुज्ञ पुरुष छे. 'सारा' माणसो अने 'खराब' माणसो विशे एक एक श्लोकमां ६-६ वातो गूंथवामां आवी छे, जे जगतना निरीक्षण-परीक्षण वगर सूझे नहीं.

श्लो. ३४मां 'थल' शब्द 'मरुभूमि'ना अर्थमां नोंध्यो छे. राजस्थानमां आ शब्द आ ज अर्थमां प्रचलनमां छे. आ रचनामां जूनी देश्य भाषाना शब्दो घणा छे अने ते आजनी भाषाओमां हाजर हशे ज. देश्य, अपभ्रंश, संस्कृतना कोशो उपरांत राजस्थानी, बंगाली, जूनी गुजरातीना कोशोनी पण मदद लेवी पडे एवुं छे.

मुनिश्री प्रेमविजयजी उग्र तपस्वी, अभिग्रहधारी महात्मा हता, साथे साथे ज्ञानोपासक, साहित्यप्रेमी पण हता, कवि हता, ने कवि हता एटले रसिक पण हता ज. एमनी घणी लघु रचनाओ मळे छे. तेमनी गुजराती कृतिओना संग्रहनुं एक मुद्रित पुस्तक मारे हाथ चडेलुं ने ते, ते वखते पू. प्रद्युम्नसूरिजी म. ने मोकली आपेलुं. आचार्यश्री प्रेमविजयजीनी रचनाओनो संग्रह प्रकाशित करवा इच्छता हता, ते थई न शक्युं.

अहीं प्रकाशित नमस्कार संग्रहमां 'कुम्भलभेर'नो उल्लेख छे, जे सूचवे छे के कविना समयमां कुम्भलमेर-कुम्भलगढनी यांत्रा जैनोमां प्रवर्तमान हती. ते पछी जैनोए कुम्भलगढने विसारे पाडी दीधुं छे.

कडी १०मां पांचमी पंक्तिमां 'लोटीण उतारइ' छपायुं छे त्यां 'लोटीणउ तारइ' एम वांचवुं जोईए.

आ अंकनी महत्त्वपूर्ण रचना छे — कल्याणविजयजी रास. सम्पादक मुनिवरे रासना नायक, रास अने रचनाकार बधा विशे पार्श्वभूमिकानी विगतो पूरी पाडी छे, रासनुं महत्त्व रेखांकित करी आप्युं छे. रास कवित्वसभर छे, रसिक छे, भावोत्पादक छे. थोडां शुद्धिस्थान छे —

क. २०	मुझ	मुझ मन
क. २५	पांडुर	अहीं 'पाडउ' कल्पवानी जरूर नथी. पांडूर-पंडूर शब्द पुष्ट, मोटुं, विशाळ एवा अर्थमां छे.
क. २५	प्रकार	प्राकार (गढ)
क. ३८	परिपरि	परि परि
क. ८१	माडली	माउली
क. ८५	हुगाइं	सहु गाइं
क. १०७	पापणी	पाणी

- |          |          |                                 |
|----------|----------|---------------------------------|
| क. १६३   | भिण      | अर्थ छे — बहेन. कच्छीमां ‘भेण’. |
| क. १७४नी | आंकणीमां | ‘विष अपार’ ने बदले ‘विषम अपार’  |
| क. २२२   | मुदा फरी | मुदाफरी (मुजफरी नाणु)           |
| क. २४७   | उपरत     | अर्थ — उपरांत, -थी वधारे        |

शब्दकोशमां ‘वसिनारी’ (क. २९)नो अर्थ ‘वेश्या’ लख्यो छे, ते अर्ही असंगत छे. वसनारी-रहेनारी एको अर्थ होई शके. श्राविकाओनी वात छे, तंगी (क. २९७)नो अर्थ ‘तंबू’ ठीक लागतो नथी. कापडनी वात छे. ‘ताका’ अर्थ बेसे. तंबूनी वात आना पछीनी कडीमां आवे छे. भुंजाई (२९८) शब्द कोशमां लीधो नथी, पण लेवा जेवो छे. मीठाई जेवो आ भुंजाई शब्द फरसाणना अर्थमां त्यारे प्रचलित हतो, एम जणाई आवे छे. क. ११२ पछीनी पंक्तिमां ‘नेखसाला’ शब्द जोवाय छे. आजना ‘निशाळ’नुं मूळ आ ‘नेखशाला’ छे. ‘लेखशाला’ → नेखसाला → नेहसाला → नेसाला → निशाळ. क. ३७मां धाणधार शब्द छे. पालनपुरनी आसपासना विस्तारने धाणधार कहेता हता. क. २२२मां ‘मुदाफरी’ ए नाणु छे. ‘मुजफरी’नुं संस्करण करी ‘मुदाफरी’ कर्यु छे. जूना सिक्काना अभ्यासीओ वधारे कही शके.

शत्रुञ्जयचैत्यपरिपाटी स्तंवनमां वाचनभूलो देखा दे छे. क. १. ‘आगममही’ : आगम मांही. क. ५. अतिउमांहि : अति उमाही. क. १२. संधी रे : सधीर रे. ते समये शत्रुञ्जयना देरासरो-टूकोना नामोमां फेरफार जणाय छे. अलग अलग समये जुदा जुदा नाम प्रचलनमां होई शके.

आ. श्रीकुन्दकुन्दस्वामीना साहित्यक प्रदान विशे श्रीसागरमलजी जेवा अधिकारी विद्वाननो लेख महत्त्वपूर्ण विगतो पूरी पाडे छे. विषयनी सन्तुलित प्रस्तुति ध्यानमां लेवा जेवी छे.

श्रीत्रैलोक्यमण्डनविजयजीए हिन्दीमां लखवानुं शरु कर्यु छे ते ठीक ज छे. एक आरूढ विद्वाननी सज्जताथी मुनिश्रीए विषयनो निर्वाह कर्यो छे. विविध मतोमां रहेला ‘ख्याति’ विषयक सूक्ष्म व्याख्याभेदो समजवा / समजाववा तीक्ष्ण मेधा/स्मृति जोईए. दर्शनना विद्यार्थीओने आ लेख वांचवानी मजा पडशे.

## વિહંગાવલોકન-અઙ્ક શ ૧

— ઉપા. ભુવનચન્દ્ર

જૈન જ્ઞાનભણડારોમાં સ્તોત્ર-સ્તુતિ-સ્તવનનો જાણે અક્ષયભણડાર છે. પ્રભુસ્તુતિ સાધુ-શ્રાવક બન્નેની આરાધના સાથે જોડાયેલી વસ્તુ છે. ભાવોલ્લાસ માટે નવાં નવાં સ્તોત્ર સહાયક બને છે. જૈન સંઘમાં અધ્યયન-અભ્યાસ-શિક્ષણનું વાતાવરણ પણ ઉચ્ચ સ્તરનું રહેતું આવ્યું છે — ખાસ કરીને ત્યાગી વર્ગનું. એટલે સર્જનનું સ્તર પણ સહેજે વધારે ઊંચું હોય. આમ, લોકભોગ્ય અને ઉપયોગી સર્જન તરીકે સ્તોત્રસ્તવન સાહિત્યનું નિર્માણ વધુ હોય એ સ્વાભાવિક છે.

અનુ૦ ૭૧માં પ્રથમ ક્રમે પ્રકાશિત ‘શાન્તિસ્તવ’ ગીતિકાવ્ય છે અને એક સમર્થ કવિની રચના છે. શ્રીજયવંતસૂરી રસકવિ હતા અને પ્રસ્તુત રચનામાં તેમની એ મુદ્રા પ્રખર રૂપે અઙ્કિત છે. સમ્પાદકે એક વાતની નોંધ નથી લીધી, અને તે એ કે કવિએ આ લઘુ સ્તોત્રમાં નવેય રસ સમાવ્યા છે. શૃઙ્ગાર, હાસ્ય, કરુણ, રૌદ્ર, વીર, ભયાનક, બીભત્સ, અદ્ભુત, શાન્ત - એ નવ રસોની હાજરી કઈ રીતે છે તે અહીં જોઈ લઈએ —

પ્રથમ ચાર શ્લોકો પ્રસ્તાવના કે ભૂમિકા જેવા છે. પછી એક-બે કે ત્રણ શ્લોકોમાં એક-એક રસનો ભાવ દૃશ્યમાન થાય છે. અમુક રસનાં નામ પણ ક્યાંક ડોકાય છે, બાકી ઉદ્ગારો / રૂપકો / કલ્પનો દ્વારા તે-તે રસનો નિર્વાહ થયો છે. ૪થા પદ્યમાં ‘રીતિરતાઃ’ શબ્દ દ્વારા ‘રીતિ’નો સીધો ઉલ્લેખ પણ કર્યો છે. પદ્ય ૫માં ‘કામદેવના ગર્વનું ખણ્ડન’ વગેરે શબ્દો શૃઙ્ગારના વ્યઞ્જક છે. પદ્ય ૬માં વિત્ત્રાસન-ભયની વાત થર્ડ છે. ૭-૮-૯ એ ત્રણ પદ્યોમાં વિજયનાં કલ્પનો દ્વારા વીરરસ ઘૂંટ્યો છે. ૧૦-૧૧ એ બે પદ્ય કઠોરતા અને વैરિના નાશના વર્ણન દ્વારા રૌદ્ર રસ પોષે છે. ૧૨-૧૩ બે પદ્ય પ્રભુની મનોહરતા ઊપસાવી વિસ્મય-હાસ્યનો ભાવ જગાડે છે. ૧૫મા પદ્યમાં ભગવાન પર દ્વેષ કરનારા પર કરુણાના ઉદ્ગાર છે. અહીં ‘કરુણ’શબ્દ પણ હાજર છે. ૧૬માં પદ્ય બીભત્સ રસની લાગણી જન્માવે છે. ૧૭મા પદ્યમાં ભગવાન અદ્ભુતસાગર છે એમ કહી અદ્ભુત રસનું નિરૂપણ કર્યું છે. છેલાં પદ્યોમાં શાન્તરસ ઘૂંટાયો છે. ‘શાન્તિ’શબ્દ પણ યોજ્યો છે.

આ અઙ્ગમાં બીજી એક પ્રૌઢ સ્તોત્રકૃતિ પાર્શ્વજિનસ્તવન યમકબદ્ધ હોવાથી કર્ણપ્રિય બની છે. ભાષા પ્રાસાદિક છે. થોયજોડાનો જે એક પ્રચલિત રાગ છે તે ઢબે આ ગાઈ શકાય છે. યમકના સર્જન માટે સંધ્ય, સમાસ, અનેકાર્થક શબ્દો અને અલ્પપરિચિત શબ્દોની મદદ લીધી છે. બેર, વૃષ, નિર્ઝાર, સા-કર વગેરે આવા અલ્પ પ્રચલિત શબ્દો છે.

આ અઙ્ગની અમૂલ્ય ઉપલબ્ધ છે — વાદીન્દ્રવાદિવસૂરિચરિતમ्, શ્વેતામ્બર પરંપરાના આ દિગ્ગજ આચાર્યનાં નામ અને કામથી સૌ પરિચિત છે. આવી ધુરન્ધર પ્રતિભાના જીવનચરિતનું ન રચાય તો જ નવાઈ. હવે અપૂર્ણ તો અપૂર્ણ, પણ જીવનચરિતનું મહાકાવ્ય જ્ઞાનભણ્ડારમાંથી બહાર આવ્યું છે. મહાકાવ્યની શૈલીએ રચાયું હોવાથી ઇતિહાસ કે જીવનવૃત્તાન્ત આપવાનો આમાં ઉપક્રમ ન હોય. કવિ આ મહાપુરુષના ગુણગ્રામ અને કાવ્યરસ સર્જનના આશયથી રચના કરે છે, તેમ છતાં, ઘણી બધી ઇતિહાસોપયોગી વિગતો આમાંથી મળી રહે છે, અથવા અન્યત્ર પ્રાપ્ત વિગતોને નવો આધાર પ્રાપ્ત થાય છે. સમ્પાદકોએ આની સવિસ્તર ચર્ચા કરી છે.

વાદિવેસૂરિના ઘણા શિષ્યો હતા. એમાંના એક શ્રીપદપ્રભસૂરિ તપસ્વી હતા, નાગોરમાં તેમને ‘તપસ્વી’ બિર્દ મલ્લયું હતું. પદપ્રભસૂરિની પરમ્પરા નાગોરી વડગઢ્છ નામે ઓળખાઈ. જયશેખરસૂરિ એ પરમ્પરામાં થયા. આગઢ જતાં આ જ પરમ્પરા પાર્શ્વચન્દ્રસૂરિના નામે પાર્શ્વચન્દ્રગઢ્છ તરીકે આગઢ ચાલી.

પ્ર. ૧, શ્લો. ૨માં અમ્બર શબ્દ આગઢ પ્રશ્નચિહ્ન મૂકેલું છે. આ પાઠ અશુદ્ધ નથી. દિગ્મ્બરવિજય અને શ્વેતામ્બર માન્યતાના મુદ્રા કવિએ સ્તુતિમાં સાત વિભક્તિમાં વણી લીધા છે અને એ રીતે વાદિવેસૂરિના પ્રદાનનો મહિમા કર્યો છે. આ શ્લોકમાં ‘વલ્લતે’ ક્રિયાપદનો અર્થ ‘આહાર કરે છે’ એવો નીકળે છે.

પ્ર. ૨માં શ્લોક ૬૭માં બાલ પૂર્ણચન્દ્ર ચણા આપીને દ્રાક્ષ લેવાનો વેપાર કરે છે — એ વાત આવે છે તે સુશક્ય છે. અને ‘ધીવર’નો અર્થ ‘માછીમાર’ જ લેવો જોઈએ.\* વ્યાપાર કંઇ વિદ્વાનો સાથે જ થાય એવું ન હોય. ભરુચ તો સમુદ્રતટ વાળો પ્રદેશ છે, ધીવરો-માછીમારોની વસતી હોય. પછાત વિસ્તારોમાં

\* આ વિધાન સાથે સમ્મત થવું મુશ્કેલ છે. ધીવર એટલે બુદ્ધિમાન् । -સં.

वेपारीओ विनिमय द्वारा आजे पण व्यापार करे छे. बालक पूर्णचन्द्र विकट परिस्थितिमां पिताने आ रीते मदद करता हता — ए वात कविए नोंधी छे. ए विस्तारमां ते समये द्राक्ष ऊगती हती ए पण सूचित थाय छे. श्लो. ६८मा 'वंशपात्र' शब्द छे. आनो अर्थ टोपली, करंडियो के सूपडुं होई शके.

कृतिनी वाचना परिश्रमपूर्वक तैयार थई छे. क्यांक अस्पष्टता रहे छे. संशोध्य स्थान पण छे :

प्र.	श्लो.	संभवित पाठ
१	१५ चरितं	चरित्रं
	३३ धनेन्दु०	घनेन्दु०
	६५ [ ]	[कास]
	६६ व्यभूषता०	व्यभूष्यता०
	७५ °ङ्गवयवा	°ङ्गावयवा
२	५९ नृपति०	नृपति
	९५ कुतकं	कुसुकं
	१०१ घाटी	धाटी
	१०२ °खि(लाग्नि)शिखा०	[च्छ]खिशिखा०
	१०६ स्नाणं	स्नाणं
	१२८ ०रूमि०	०रूर्मी०
	१३० परिषहंश्च	परीषहंश्च
३	२४ किमिच्छं (त्थं)	किमित्थं
	२४२ क्यारेक लहियाओ च्छ अने त्थ सरखा लखता हता. अहीं त्थ ज वांचवो जोईए।	
	१०३ स्वसुरस्य	श्वसुरस्य
	१७८ प्रवी(की)र्णविष०	प्रकीर्णा विष०
	प्रकीर्णनो एक अर्थ 'विशाल' थाय छे.	
	२४१ न धे(हि)	०१नधे

२४६	व(च)	व(च)[स]
२५४	०विधया	०विद्यया
३२१	विधा०	विद्या०
४	६ सौख्य-	सौख्या०

एक अजैन खण्डकाव्य उपर जैनाचार्य द्वारा रचित टीका आ अङ्गमां प्रगट थाय छे. मूल कृति अजैन छे, एटलुं ज नहि, शृङ्गररसनी रचना छे, तेम छतां जैन आचार्य एना पर टीका लखी शके छे. आ शुद्ध साहित्यिक अभिगम छे. जीवन प्रत्येनो सन्तुलित अभिगम पण छे. अने तेने शक्य बनावे छे अनेकान्त दृष्टि. टीकाना अन्ते टीकाकार लखे छे : “आ टीका रचवाथी उपार्जन थयेल पुण्य वडे लोको निर्वाणनी प्राप्ति करो!”

‘केटलीक लेखपद्धतिओ’ वांचतां मात्र संस्कृत भाषानी मजा ज नहि, पत्रलेखक-पत्रपाठक वच्चेना भावसंबंधोनी भीनाश पण अनुभवाय छे. श्राविकालेखनी १०मी पंक्तिमां स्वस(सं)दर्शन... ए विशेषण छे तेमां “पोताना मुखना दर्शनथी आनन्द ऊपजावनारी” एवो भाव जणाय छे, आथी मुखवाचक शब्द अहीं होवो जोईए. ‘सदर्शन’ शब्द मुखवाचक बनी शके. आवा कृत्रिम नामो योजवानी परिपाटी साहित्यक्षेत्रे हमेशां रही छे. वळी आनाथी पहेलां रूपनी वात पण थई छे. आथी स्वसदशन... एवो पाठ विचारी शकाय. ‘सदशन’ माटे आधार गोतवो रह्यो.

‘केटलांक पत्रो’ विद्वान मुनिजनोना पाण्डित्यसभर व्यवहारोनां चित्रो पूर्णं पाडे छे. ‘लेखपद्धति’ जेवी कृति पण पत्रलेखनो महिमा कोई समये केटलो हृदयपूर्वक स्वीकारायो हतो तेनी झांखी करावे छे. आ संग्रहमां अवसरी, सारा, रावा, रणरणक जेवा बोलचालनी भाषामांथी संस्कृतमां प्रवेशेला शब्दो छे.

श्रीतिलकविजय कृत सुविधिनाथस्तवनमां क. ३मां ‘पहिडइ’ शब्द छे, जे व्युत्पत्तिनी दृष्टिए महत्त्वनो छे. वचनथी फरी जवुं, प्रार्थनानो भंग करवो - एवो अर्थ नीकळे छे. आना परथी ज ‘फेडवुं’ आव्यो हशे. ‘फेडवुं’नो अर्थ ‘पूर्ण करवुं, अन्त आणवो’ - एवो सीमित रही गयो.

‘अष्टापदीर्थस्तवन’मां अष्टापद साथे सम्बन्ध राखती पुष्कळ विगतो गूंथी लेवाई छे. क. ९मां ‘घंटो’ वाचनभूल जणाय छे. ‘घाट’ सुसंगत बने. क. २७मां ‘झमाउल’ छे, ते ‘झलामल’ होई शके.

अनुयोगद्वारसूत्रना पाठनी झीणी चर्चा शास्त्रीय विषयोना अभ्यासीओने लाभदायक थशे. श्रीमती नलिनी बलवीरनो प्रतिमासौन्दर्य विषयक लेख पठनीय छे. भाषा क्यांक क्लिष्ट-अस्पष्ट रही छे, परन्तु विदुषी लेखिकानो गहन अभ्यास लेखमां प्रत्यक्ष थाय छे. आवा भावात्मक विषय पर एक अ-जैन विदुषी लग्बे ए वात ज अत्यन्त आदरणीय छे.

श्रीकृष्ण विशे प्राकृत अने अपभ्रंश भाषाना जैन साहित्यमां व्यापक सर्वेक्षण करीने, तथा अन्य परम्पराना साहित्य साथे तुलना करीने लखायेलो श्रीसागरमलजीनो लेख श्रीकृष्ण विशे घणी, सामग्री आपणी जाणकारी माटे एकत्र करी आपे छे.

‘नन्दावर्त’ विशेनो ढांकीसाहेबनो लेख लांबा समयथी चाली आवती भ्रान्तियुक्त मान्यताने प्रकाशमां लावे छे. संशोधन द्वारा ज आवी भ्रान्तिओनुं परिमार्जन थई शके. संशोधन द्वारा आवी माहिती मळ्या पछी एनो यथास्थाने अमल करवानी फरज सङ्घनायकोनी छे.

\*

अनु० नो आ अङ्क बहुमुखी प्रतिभाना स्वामी डॉ. मधुसूदन ढांकीना स्मृति विशेषाङ्क रूपे प्रगट थयो छे.

अङ्कना पूर्वार्धमां संशोधन/सम्पादन लेखो अपाया छे; उत्तरार्धमां ढांकीसाहेब विषयक लेखो मूकाया छे. ढांकीसाहेबनी कीर्ति सर्वदिग्गामिनी हती. ‘विद्वान् सर्वत्र पूज्यते’नी उक्ति तेमना जीवनमां सार्थक थई हती. भारत अने भारत बहारना भिन्न भिन्न विद्याशाखाओना विद्वत्समाजोमां तेमनुं नाम अत्यन्त आदरभेर लेवातुं हतुं. ढांकीसाहेब विशे एवा केटला क्षेत्रोना केटलाय विद्वानोने कंईक कहेवानुं मन हशे. ए बधाना मनोभावो एकत्र करवा मुश्केल छे. कोई सक्षम विद्यापीठ ए काम करे एकी आशा राखीए. अनुसन्धान द्वारा एक अंजलि अपाई छे, अने तेनी एक विशेषता छे. अहों संगृहीत स्मृतिलेखो

मोटा भागे ढांकीसाहेबना निकट क्षेत्रवर्ती अने सीधा परिचयमां आवेली व्यक्तिओना हृदयोदगाररूपे लखाया छे.

अवंतिकाबेने ढांकीसाहेबनो साक्षात्कार करी लखेलो लेख पूर्वप्रकाशित छे, पण अहीं ते योग्य रीते ज प्रथम क्रमे मूकवामां आव्यो छे. आ लेख ढांकीसाहेबनो अन्तरङ्ग परिचय आपे छे. ढांकीसाहेबना जीवन / अनुभव / कार्यकलाप विषयक वातो लेखिकाए तेमनी पासेथी सुपेरे कढावी छे. लेखिकाना उद्गार : “रुंवे रुंवे सौन्दर्य अने कलाना मर्मा मधुसूदनभाईनुं हैयुं साधुनुं छे, जेथी ज तेमनां वाणी-वर्तन अने विचारमांथी आटलो आन्तरवैभव छलकाय छे” — साब साचुं छे.

स्मृतिलेखोमां ढांकीसाहेबनां मनोमुग्धकर शब्दचित्रो आलेखायां छे. लेखकोनां मन पर ढांकीसाहेबनी अंकित थयेल छ्बीनी केटलीक रेखाओ तारवानुं मन थाय छे :-

खरच्युं आखुं आयखुं विधविध विद्या माट,

सघन संशोधन कर्युं, माथा साटोसाट.

### — राजेश पंड्या

... तेमनी निखालसता जोई अमे दिड्मूढ थई गया! तेमणे कहुं : “महाराजश्री, मारी वाचना करतां तमारी वाचना वधु सुन्दर छे. तमे ते रीते तेनुं प्रकाशन करो”. विद्वतानी साथे आवी नम्रता प्रायः घणी ओछी व्यक्तिओमां जोवा मळे.

— गणि सुयशचन्द्रविजय

— मुनि सुजसचन्द्रविजय

कोई व्यक्ति पोताना मर्यादित जीवनकालमां केटलुं काम करी शके, केटली विद्यामां पारंगत थई शके एनुं उदाहरण मधुसूदन ढांकी छे.

### — राजुल दवे

ढांकीसाहेबना संगीतविवेचक-संशोधक तरीकेनुं नोंधपात्र लक्षण निर्भीक, निर्भ्रान्त, मुक्त एवा अभिप्रायनुं छे.

— हसु याज्ञिक

... जैनाचार्योंने समय निर्धारित करवानुं महत्त्वपूर्ण काम कर्युं. जैन-बौद्ध आगमो, संगीतशास्त्र, होर्टीकल्चर, पशु-पंखीना अवाजो, रसविद्या, कलाओ आदि विषयोमां तेओ सिद्धहस्त लेखक हता.

— जितेन्द्र बी. शाह

मने स्पर्शी गई छे तेमनी निखालसता, सरळता, नम्रता, सादगी... तेमनुं अर्किचनपणुं... विद्या अने अध्यात्म बन्नेनो सुयोग...

— रमजान हसणिया

....बहुचर्चित अने संवेदनशील विषय परत्वे 'जनोईवढ घा' करवा माटे महारथीनी शक्ति अपेक्षित होय छे. ढांकीसाहेब आवा महारथी हता.

— छेलभाई व्यास

विविध विद्याशाखाना तज्ज्ञ होवुं एटले, शुं ? ते आजे (पारकी) सूंठने गांगडे गांधी गणावनारना समयमां समजबुं मुश्केल लागे. एवां परिबळो वच्चे मधुसूदन ढांकीसाहेबनी प्रतिभा विशेष महत्त्वनी छे.

— डो. मनोज रावल

तमे थोडीक वार बेसो एथी एमने धरव न थाय. एमनो अनुभव भण्डार खूटे एवो न हतो ने विनोदवृत्ति सतेज.

— रमण सोनी

शास्त्रोक्त छणावट करवानुं कदाच तेमना 'जीन्स'मां हतुं. आवी 'ज्ञानामृतकुम्भ' (व्यक्ति)नी चिरविदाय वसमी लागे ए स्वाभाविक छे. ज्ञान साथे निखालसता घणी जूज व्यक्तिमां जोवा मळे.

— डो. रेणुका पोरवाल

गुजरातना पुरातत्त्वविद्, स्थापत्यशास्त्री, इतिहासविद्, संगीतज्ञ, वृक्ष-पशु-पक्षीप्रेमी, भारतीय संस्कृति तथा जैनधर्मना शास्त्रोना अठंग अभ्यासी, पद्मविभूषणनी पदवी, कुमारचन्द्रक अने कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य-चन्द्रक जेवां अनेक सन्मानो जेमने प्राप्त थयेलां एवा आन्तरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त बहुश्रुत विद्वान श्रीमधुसूदन ढांकी...

— डो. निरंजन राज्यगुरु

Dr. Dhaky had great love for languages also; he could read and write Sanskrit, Prakrit, Pali, Magadhi, Ardhamagadhi, Apabhransha, English, French, Hindi, Marathi and Gujarati languages. This helped him deciphering inscriptions.

— Dr. Renuka Porwal

...तेओ एक एवं प्रतिभाबीज हता के ए जे जमीन पर पडे त्यां ऊगी नीकळे अने म्होरी ऊठे. ...विद्याउपासना छेले सुधी चालु रही... हसतां हसतां कहेता के मारी दशा तो स्टीफन होकिन्स जेवी छे. आ शरीर पर सोळ सोळ ओपरेशन थयां छे पण हजी मगज पूरेपूरुं साबूत छे.

— डॉ. कुमारपाळ देसाई

पोताना विषयमां अने प्रतिपादनमां स्पष्ट अने दृढ. तेना समर्थनमां तर्को, युक्तिओ तो आपे ज, साथे प्रमाणो पण आपे. प्रमाणो पण, बाप रे, क्यां क्यांना टांके! आगम, त्रिपिटक, वेद, अभिलेख, पुरातात्त्विक अवशेषो, शब्दप्रयोगो अने विविध विद्वानोना अभिमतो अने अर्थघटनो! बधुं ज हैयावगुं होय अने बहु ज कुशलताथी आ बधांय प्रमाणो के साक्षोनी एक जाळ रचता जाय...

— आ. शीलचन्द्रसूरि

नानालाल कहे छे ते सो वसा आमने लागू पडे : 'पुण्यात्मानां ऊँडाणो तो आभथी ये अगाध छे.' कलाना मर्मज्ञ - चित्र, शिल्प ने संगीतना तो खास. आपणी संस्कृतिनी अनेकदेशीय बाजुओनी अनेकपक्षी दृष्टि एटले ढांकीसाहेब - संस्कृतिसौरभनुं मानवरूप!

— कनुभाई जानी

मूल्यद्वासनी तेमने भारे चिन्ता हती. ए रीते जोइए तो तेओ प्रशिष्ट परम्पराना आग्रही हता. अने ए आग्रह एकेएक क्षेत्रमां तेओ राखता हता.

— शिरीष पंचाल

एमनुं जैन इतिहास अने साहित्यमां प्रदान खूब महत्त्वनुं छे. जैन साहित्य अने धर्म प्रत्येनो एमनो अभिगम अरूढ अने एक सत्यवक्तानो छे. तेओ परम्पराप्राप्त माहिती स्वीकारे खरा पण एने चारेबाजुथी चकास्या बाद.

— हेमन्त दवे

... એમને દરેકને અનુકૂળ થવાનો કીમિયો હસ્તગત. અથવા તો દરેકમાંનું ઊજલું પાસું માપી લેવાની દૃષ્ટિ. એમના મનમાં વસી ગયેલ દરેક વ્યક્તિને પોતે સામે ચાલી ફોન કરે... સામેવાળો માણસ નાનો હોય કે મોટો, એમને માટે સરખો...

**- પીયુષ ઠક્કર**

જૈન દેરાસર,  
નાની ખાખર - ૩૭૦૪૩૫  
જિ. કચ્છ, ગુજરાત

\* \* \*

માહિતી :

## ડૉ. સાગરમલ જૈનને ‘હેમચન્દ્રાચાર્ય-ચન્દ્રક’

ડૉ. સાગરમલ જૈન આપણા એક પ્રખર દર્શાનિક વિદ્વાન છે. ભારતીય દર્શનશાસ્ત્રો અને તત્ત્વજ્ઞાનના વિષયમાં તેઓ આરૂઢ વિદ્વજ્જનલેખે પ્રખ્યાત છે. પ્રાચીન આગમો વિષે તેમનાં સંશોધનોને વિદ્યાજગતમાં વ્યાપક સ્વીકૃતિ સાંપદી છે. જૈન-બૌદ્ધ-વैદિક દર્શનો વિષે તેમણે કરેલ તુલનાત્મક અધ્યયનના ગ્રન્થો અભ્યાસુઓ માટે માનદણ્ડ સમાન છે.

તેમણે ૫૭ જેટલા ગ્રન્થોનું અને સેંકદો શોધલેખોનું સર્જન કર્યું છે. સમ્પાદિત ગ્રન્થોનો આંક તો તેથીયે ઘણો મોટો છે. તેમના માર્ગદર્શન હેઠળ વિવિધ વિષયો પર Ph.D. કરનારા વિદ્યાર્થીઓની સંચ્ચા બહુ મોટી છે, એમાં અનેક જૈન સાધુ-સાધ્વીઓનો પણ સમાવેશ થાય છે.

૮૫ વર્ષે પણ તેમનું અધ્યયન-અધ્યાપન અવિરત ચાલુ છે. બનારસના પાર્શ્વનાથ વિદ્યાશ્રમ સંસ્થાનના નિર્દેશક પદે રહીને ‘શ્રમણ’ જેવી એકાધિક શોધ-પત્રિકાઓનું સમ્પાદન સંભાળનારા ડૉ. જૈન વર્તમાનમાં પોતાના વતન શાજાપુરમાં ‘પ્રાચ્યવિદ્યા શોધપીઠ’ નામક સંસ્થા ચલાબે છે, અને ત્યાં હજારો ગ્રન્થોના ગ્રન્થાલયનું તથા શોધકેન્દ્રનું સંચાલન કરવા દ્વારા વિદ્યાકીય વિવિધ પ્રવૃત્તિઓ કરતાં રહે છે.

આવા મૂર્ધન્ય વિદ્વાનને ‘શ્રીહેમચન્દ્રાચાર્ય-ચન્દ્રક’ પ્રદાન કરવાનો એક સમારોહ તા. ૨૮-૨-૨૦૧૭ના રોજ અમદાવાદમાં શેઠ હઠીસિંહની બહારની વાડીમાં ભવ્ય રીતે યોજાઈ ગયો. કલિકાલસર્વજની નવમી જન્મશતાબ્દીના વર્ષ (વિ.સ. ૨૦૪૫), તેજોમૂર્તિ આચાર્ય શ્રીવિજયસૂર્યોદયસૂરીશ્વરજીની ભાવના તથા પ્રેરણાથી રચાયેલ શ્રીહેમચન્દ્રાચાર્ય ટ્રસ્ટના ઉપક્રમે યોજાએલ આ સમારોહ, પૂજ્ય આચાર્ય શ્રીવિજયહેમચન્દ્રસૂરીશ્વરજી મ. તથા આ. શ્રીવિજયશીલચન્દ્રસૂરિજી આદિની પાવન નિશ્ચામાં સંપન થયો હતો.

શ્રીઅમિત ઠકકર અને દીપિબેન દેસાઈ દ્વારા ગવાયેલ મજલ પ્રાર્થના, શ્રીનલિનીબેન દેસાઈનું સમતોલ સંચાલન, મહારાજશ્રીનાં અને ઉપરાંત ડૉ. કાન્તિ

गोर (कच्छ), डो. निरंजन राज्यगुरु (सौराष्ट्र), डो. जितेन्द्र बी. शाह आदि विद्वज्जनोनां प्रसंगोचित वक्तव्यो - आ बधाने लीघे समारोह खूब जीवंत अने प्रसन्नकर रह्यो. ट्रस्टना बधा ट्रस्टीओनी उपस्थिति हती.

चन्द्रक प्रदान करवानी साथे साथे डो. जैनने प्रशस्तिपत्र, सरस्वती देवीनी चन्दननी प्रतिमा, शोल-तिलक-हार-श्रीफल उपरांत १.११ लाखनो धनराशि - आ बधुं अर्पण करवामां आव्युं हतुं. डो. जैन, पोताने अपायेल ते धनराशि प्राच्यविद्या शोधपीठना ग्रन्थालयने अर्पण करवानुं जाहेर कर्युं हतुं.

उल्लेखनीय छे के श्रीहेमचन्द्राचार्य ट्रस्ट द्वारा, अत्यार सुधीमां अन्य १५ जेटला मूर्धन्य विद्वानोने आ चन्द्रक अर्पण करवामां आवेलो छे.

चन्द्रक स्वीकार्या पछी डो. जैने प्रतिभावरूप वक्तव्य आपतां श्रमण संघमां तथा जैनोमां आगमादि शास्त्रोनुं अध्ययन वधारवानी प्रेरणा करी हती.

समारोह पूर्ण थया पछी श्रीहठीभाईनी वाडीना जैन संघ द्वारा योजायेल भोजन-समारंभ बाद सहु विखराया हता.

\*

## डॉ. भारतीबेन शेलतने 'श्रीपुण्यविजयजी चन्द्रक'

आगमप्रभाकर श्रुतशीलवारिधि मुनिराज श्रीपुण्यविजयजीनी दीक्षाशताब्दी निमित्ते, आचार्य श्रीविजयशीलचन्द्रसूरिजीनी प्रेरणाथी एक चन्द्रक अर्पण करवानो निर्णय थयो हतो. ते माटे एक फण्ड पण करवामां आवेलुं, अने ते फण्ड तथा चन्द्रकने लगती तमाम जवाबदारी गुजरात विश्वकोश ट्रस्टने सोंपवामां आवी हती. चन्द्रक समिति अने विश्वकोश ट्रस्ट द्वारा संचालित आ प्रकल्पना अन्वये अत्यार सुधीमां पांच विद्वानोने चन्द्रक एनायत थयो छे. ते अंगेनो समारोह विश्वकोश भवनमां डो. कुमारपाल देसाईनी दोरवणी हेठल योजाय छे.

प्राचीन अने मध्यकालीन जैन के अन्य साहित्यना क्षेत्रे पोतानुं प्रदान अने अध्ययन-संशोधन करनार विद्वाने आपवामां आवतो आ चन्द्रक आ वखते डो. भारती शेलतने आपवामां आव्यो. भारतीबेननुं मुख्य प्रदान भारतीय

અભિલેખવિદ્યાના તથા પુરાતન સિક્કાઓના ક્ષેત્રે રહ્યું છે. ભાગવતપુરાણની સમીક્ષિત વાચના તૈયાર કરવામાં પણ તેમનો મોટો ફાઢો છે. વિવિધ જૈન ગ્રન્થો પર તેમજ ગુજરાતના ઇતિહાસ-ગ્રન્થો પર પણ તેમણે ઘણું કામ કર્યું છે.

તા. ૨૬-૩-૧૭ના સવારે વિશ્વકોશ ટ્રસ્ટ - ભવનમાં, આ. શ્રીવિજય-શીલચન્દ્રસૂરિજીની ઉપસ્થિતિમાં, ડૉ. કુમારપાઠ દેસાઈની અધ્યક્ષતામાં યોજાયેલ એક સમૃદ્ધ સમારમ્ભમાં શ્રીભારતીબેનને શ્રીપુણ્યવિજયજી ચન્દ્રક અર્પણ થયો હતો. ચન્દ્રક ઉપરાંત સરસ્વતી-પ્રતિમા, પ્રશસ્તિપત્ર, શોલ, શ્રીફલ, હાર, તિલક અને ૫૧/- હજારની ધનરાશિ પણ અર્પણ થયાં.

આ પ્રસંગે ડૉ. થોમસ પરમાર, ડૉ. દેસાઈ વ.નાં સુન્દર પ્રવચનો થયાં. ડૉ. શેલતે પણ પોતાનો પ્રતિભાવ સરસ રીતે વ્યક્ત કર્યો. કવિ જસુભાઈનું સંચાલન રસમય રહ્યું.

---

